भारत के आदिवासी

लेखक :

जनक अरविन्द

प्रकाशक :

दी इण्डियन पब्लिकेशन्स

अम्बाला छावनी।

प्रथमावृत्ति]

[मूल्य : ३'५० नये पैसे

प्रकाशक :
प्रो० पी० वैद,
मैनेजर, दी इण्डियन पब्लिकेशन्स,
अम्बाला छावनी ।

मूल्य :
तीन रुपये पचास नये पैसे

मुद्रक :
श्री अमर नाथ सिंघल, बी० ए०,
प्रो० नैशनल प्रिंटिंग प्रेस,
अम्बाला छावनी ।

प्राक्कथन

'भारत के आदिवासी' पुस्तक हिन्दी साहित्य में रिक्त-स्थान की पूर्ति करने वाली है। इस समय तक अधिकांश लेखक इतिहास, भूगोल, धार्मिक तथा साहित्यिक विषयों पर ही लिखते थे। वर्तमान विज्ञान तथा सभ्य मानव-समाज के विविध स्थानों में विद्यमान पूर्व-वर्ती जन-समुदायों के सम्बन्ध में, मौलिक साक्षात्. उन में रह कर, या उन से परिचय प्राप्त कर लिखे गये साहित्य की भारी कमी थी। अंग्रेजी शासकों की यह नीति थी कि भारतवासी अपने पड़ोसी राष्ट्रों से अपरिचित रहें, विशेषत: भारतवर्ष के पहाड़ों तथा जंगलों में रहने वाले समुदायों को भारतीय जनता से पृथक् रख कर उन्हें परस्पर परिचित न होने दिया जाय। जिससे उन्हें अपनी राजनैतिक शक्ति को सुरक्षित रखने में सुविधा मिले। यही नहीं, इन अशिक्षित जन-समुदायों को भारतीय संस्कृति सभ्यता से सर्वथा पृथक् रखने के लिये इन में ईसाई प्रचारकों को कार्य करने की सुविधा भी दी गई जिससे वह शिक्षा तथा चिकित्सा की सुविधा देने वाली संस्थाओं द्वारा इन्हें भारतीय संस्कृति से दूर रखें।

परन्तु अब भारत के स्वतन्त्र होने के बाद उपरिलिखित नीति में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने १. कुलाइन प्रदेश निवासी कुमी, २. स्यांग प्रदेश निवासी स्यांग, ३. खासी प्रदेश निवासी खासी, ४. थारू प्रदेश निवासी थारू लोग, ५. खस प्रदेश निवासी खस, ६. नागा, ७. जाड़, ८. भोट, ९. किन्नर, १०. कुल्लू प्रदेश के निवासी, ११. पांगी प्रदेश के निवासी, १२. मणिपुर के निवासी, १३. संथाल, १४. उरांव, १५. बेगा, १६. क़बायली, १७. अन्देमान द्वीप के निवासी, १८. मिनिकोय द्वीप के निवासी आदि अनेक जन-समुदायों का मनोरंजक संक्षिप्त सांस्कृतिक इतिहास अंकित किया है। प्रत्येक समुदाय की उत्पत्ति-काल सम्बन्धी दन्त-कथाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा भौगोलिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उनकी जीवनचर्या, प्रकृति स्वभाव के विकास का मनोरंजक विवरण दिया गया है। इन जातियों को भारतीय जनता से सर्वथा पृथक् जाति सिद्ध करने वाले योरोपियन

विचारकों की विचार-धारा का भी यथा-स्थान प्रत्याख्यान किया गया है। 'आर्य लोग निश्चित रूप से भारतीय-भूमि से भिन्न मध्य-एशिया से ही आए हैं, की स्थापना पर भी युक्ति-युक्त शंकाएँ की गई हैं।

मनुस्मृति के "वृषलत्वं गताल्लोका ब्राह्मणाना मदर्शनात्" इन जन समुदायों का भारत के शिक्षक ब्राह्मणों से सम्पर्क न रहने से ही यह जातियाँ अन्य सभ्य जातियों के साथ कदम बढ़ा कर नहीं बढ़ सकीं।

इन विवरणों में भारतीय राजपूत आदि विविध जातियों में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा इन जन-समुदायों में विद्यमान रीति-रिवाजों की समानताएँ दिखा कर इनके भारतीय राष्ट्र के अंग होने के पोषक-प्रमाण भी संगृहीत किये गये हैं।

लेखक महानुभाव का इन जातियों के इतिहास से विशेष परिचय ही इस पुस्तक की विशेषता है। यदि संभव हो सके तो रामायण और महाभारत की विजय यात्राओं के विवरणों में इन जातियों के सम्बन्ध में उपलभ्यमान संकेतों का भी इसमें समावेश किया जा सके तो उपयुक्त होगा।

हिन्दी साहित्य में नई दिशा में मौलिक पुस्तक लिखने के इस उपक्रम का मैं हार्दिक स्वागत तथा अभिनन्दन करता हूँ।

भीमसेन विद्यालङ्कार
प्रधान मन्त्री, पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन
अम्बाला छावनी।

अपनी बात—

यह पुस्तक आप के लिये लिखी गई है, —

तथा प्रत्येक उस व्यक्ति के लिये लिखी गई है, जिसने मानवता के नाते सदा मानव जाति से प्रेम करना चाहा हो,...और प्रेम द्वारा ही प्रत्येक भावी मानवीय-वैमनस्य को जीतने की आस लगाई हो। किन्तु उन लोगों के लिये भी इसे लिखा गया है जिन्होंने प्राकृतिक-सत्य से विमुख हो कर उस पर आंचल डालने की भूल की हो,...या मानव होकर भी सदा मानवता की अवहेलना की हो,......उसका अपमान किया हो !

सम्भवत: आपको मेरा यह कथन विचित्र सा लगे,...परन्तु यह सत्य है, कि इसे पढ़ने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति ऐसा ही अनुभव करेगा जैसे, यह पुस्तक केवल उसी के लिए लिखी गई है। क्योंकि इसमें मानवता की छाती पर पड़े उस पुराने घाव पर से आवरण हटाया गया है, जो जाने कब से नासूर बना उसे तड़पा रहा है,...जाने कितना मवाद उसके कलेजे में इकट्ठा हो चुका है,...और जो आज बुरी तरह सड़ रहा है। किन्तु दुख है,...पछतावा है,...कि हमें वह दिन याद नहीं आता जब हमने मानवता के इस कोमल अंग को वैमनस्यता की तेज छुरी से काट कर अपने से अलग समझ लिया था। किन्तु इस विलगता के भावों से मानव समाज ने अपने स्वभाव का परित्याग नहीं कर दिया...और वह निरन्तर बदलता ही रहा।

आंधियां आईं और इन आंधियों ने अपने धुंधले आवरण के नीचे उस घाव को कुछ समय के लिये ढक दिया,...और हम भूल गये कि वैमनस्य में अन्धे हो कर एक दिन हम ने अपनी ही छाती पर एक घाव अंकित कर दिया था।

किन्तु तूफ़ानी आंधियों में जहां इतनी सामर्थ्य है,कि वह किसी भी वस्तु को अपने धुंधले आवरणों के नीचे ढक कर खामोश कर सकती हैं, वहां उन

में यह शक्ति भी निहित रहती है, कि कठोर से कठोर आवरणों को उखाड़ भी फेंके। और आज वही घड़ी आ पहुँची है जब उन आवरणों का अस्तित्व नष्ट हो चुका है,...और हमें अपना घाव साफ़ नजर आ रहा है। जो हमारे लिये अब दुख का विषय बन चुका है। यही दुःख भरा विषय आज प्रायः एक गम्भीर प्रश्न बन कर भारत के छटपटाते हुये आदिवासियों के रूप में हमारे समक्ष आ उपस्थित होता है। यह एक समस्या है, जिसे सुलझाने की आज बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यह भोले भाले लोग भी तो हमारा ही एक अंग हैं। हमारा रक्त ही इनके जीवन में भी करवटें ले रहा है। हम एक ही माता के दो लाल हैं,...एक ही शरीर के दो अंग। फिर वैमनस्यता को भूल कर इस पर मातृत्व का मरहम तो लगाना ही होगा,...घृणा को त्याग कर अपने मन में स्नेह के भावों को जन्म देना ही होगा। तभी अपने पुरातन किये गये घृणित कर्म के इस पक्के दाग को धोया जा सकता है...तभी भयानक घाव के इस नासूर का इलाज हो सकता है।

इसी अध्ययन को देखते हुए जिन सभी के लिए जिस नियत उद्देश्य को सामने रख इसे लिखा गया है, यदि कुछ अंशों में भी वह पूरा हो सका तो मैं अपना यह प्रयास सफल समझूंगा।

अन्त में लेखक अपने प्रकाशक को धन्यवाद देना चाहता है। पुस्तक की सुन्दर छपाई तथा इस रूप में प्रकाशित करने में उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया है। इस सहयोग के लिये लेखक इण्डियन पब्लिकेशन्स के श्री सूरज प्रकाश वैद का विशेष रूप से आभारी है जिन्होंने थोड़ी सी चर्चा करने पर ही पुस्तक को छापने का इतना शीघ्र प्रबन्ध कर दिया।

अम्बाला छावनी,
१४—११—१९५७

लेखक

विषय-सूची

नागा प्रदेश के निवासी

नागा प्रदेश भारत की उत्तर-पूर्वी सीमाओं पर स्थित है। यह एक जगत-विख्यात पहाड़ी प्रदेश है। सारे संसार में प्रसिद्ध होते हुए भी यह प्रदेश हमारे लिये आश्चर्य का विषय बना हुआ है? यहां के निवासी बहुत पिछड़े हुए हैं। इन्सान होकर भी ये हिंसक बने हुए हैं। भारत जैसी देव-भूमि पर जन्म लेकर भी वे अब तक उन्नति के पथ पर अग्रसर क्यों नहीं हो पाये? इन सब बातों का उत्तर केवल एक ही है, और वह है, अविद्या तथा शिक्षा का अभाव। इसी लिए ये लोग हम से बहुत दूर हैं। यदि इन लोगों को शिक्षा से वंचित न रखा जाता, तो ये भी जीवन की दौड़ में आगे बढ़ सकते।

भारत के इन नागा-वासी लोगों को देख कर प्रतीत होता है कि इन का अतीत अवश्य ही गौरव-मय रहा होगा। इन का रहन-सहन, खाना-पीना, आचार-विचार, तथा ओढ़ना-पहनना सभी विचित्र हैं। संसार कितना आगे बढ़ चुका है इस बात की इनको तनिक चिन्ता नहीं है। ये अपने रीति-रिवाजों तथा जीवन-प्रणाली को इतना महत्व देते हैं कि देखते ही बनता है।

इन लोगों का देश बर्मा तथा आसाम की सीमान्त पहाड़ियों पर स्थित है। घोर वन तथा घोर-वर्षा के कारण यह प्रदेश बड़ा ही भयानक प्रतीत होता है। यही कारण है कि इन लोगों का जीवन भी अत्यन्त कठोर हो गया है। नागा पर्वत पर बसने वाले नागा लोग किसी अज्ञात-युग से इस क्षेत्र के आदिवासी हैं।

माओ नागा, मारिंग नागा, अंगामी नागा, कुबई नागा तथा तांगखुल नागा आदि कई प्रकार की जातियां इन लोगों में होती हैं। ये सब जातियां अपने रीति-रिवाज आदि के कारण एक दूसरे से भिन्न हैं। हर एक जाति का अपना अलग देवता होता है जिसकी पूजा ये लोग बड़ी श्रद्धा से करते

है। ये कहीं कहीं देवता पर नरबलि भी चढ़ाते है। वैसे ये लोग आर्य देवताओं की ही पूजा करते हैं। पर यह विश्वास से नहीं कहा जा सकता, कि ये लोग भारत के प्राचीन आर्यों की ही सन्तान हैं अथवा कोई आदि-वासी हैं।

नागाजाति का सामाजिक जीवन बड़े विचित्र प्रकार का है। जितने भी कुल अथवा जातियां इन में पाई जाती हैं, उन की पहचान करने के लिये पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रत्येक जाति का पहनावा एक दूसरे से भिन्न तथा एक विशेष रंग का होता है, जिससे विभिन्न जाति के नागाओं की पहचान सरलता से स्वयं ही हो जाती है।

नागा लोगों में ही नहीं, अपितु संसार के सभी आदि-वासियों में शरीर का अधिक भाग नग्न रखने की प्रथा है। ये लोग शरीर को अधिक वस्त्रों से ढकने के पक्ष में नहीं हैं।

नागा लोगों की स्त्रियां अधिकतर कमर पर एक ही कपड़ा पहने रहती हैं। इन्हें मूंगे, सीप, कौड़ी तथा मोतियों आदि के हार पहनने का बड़ा चाव होता है, कानों में बड़े बड़े छल्ले पहनने का चाव तो स्त्री तथा पुरुष दोनों को होता है। ये छल्ले अधिकतर हाथीदांत तथा लकड़ी के बने होते हैं। ये लोग इतने हृष्ट-पुष्ट होते हैं, कि वे प्रायः सेरों के भार के अलंकार पहनते हैं, किन्तु फिर भी इन्हें बोझ नहीं लगता।

कुछ समय से कुछ धार्मिक-संस्थायें नागा-लोगों में धर्म का प्रचार कर रही है। जिन में इसाई मिशन तथा गायत्री तपोभूमि आदि संस्थाओं के नाम उल्लेखनीय हैं। यही कारण है, कि बहुत से नागा लोग अब या तो अंग्रेजी ठाठ-बाठ में दिखाई देते हैं, और या भारतीय खादी वेश-भूषा में। स्त्रियां भी साड़ी तथा जम्पर पहनने लगी हैं। बहुत सी स्त्रियां तो नागा लोगों में ऐसी दीख पड़तीं हैं, कि कभी कभी उन्हें नागा-जाति की स्त्रियां समझने में सन्देह होने लगता है। पर फिर भी इन लोगों में अभी विशेष उन्नति नहीं हो पाई। कई क्षेत्र तो अब तक ऐसे पड़े हैं, जो आज के वैज्ञानिक-युग से बिल्कुल अपरचित हैं।

नागा-लोगों में अधिक जन-संख्या ऐसे लोगों की मिलती है, जिन का रंग गेहुँआ होता है। इन का स्वभाव बड़ा हंसमुख होता है। परन्तु अपनी आन पर मर मिटने की भावनाएँ इन में बड़ी जटिल होती हैं। जो कुछ भी यह लोग ठान लेते हैं, उसे किये बिना चैन नहीं लेते। चाहे उसके लिये कितना भी परिश्रम इन्हें क्यों न करना पड़े।

नागा लोगों के विषय में यह प्रसिद्ध है, कि वह सदा मेहनत कर के पेट भरते हैं। पाप की कमाई से इन्हें घृणा होती है। ये लोग कभी किसी के आगे भीख नहीं मांगते। भीख मांगना इनके समाज में एक घोर पाप समझा जाता है। इनका प्रत्येक कार्य परिश्रम से परिपूर्ण होता है। मेहनत करना इनका स्वभाव होता है।

नागाओं की मारिंग जाति में कन्या-अवस्था में पुत्री के कान में पीतल के छल्ले पहनाये जाते हैं, परन्तु विवाह हो जाने पर उनके स्थान पर अनेक धातुओं के तारों को एक तार करके बालियां बना कर पहनाई जाती हैं।

नागा जाति की स्त्रियां बड़ी बलवता तथा परिश्रमी होती हैं। घर के सम्पूर्ण कार्यों के साथ साथ खेतों में भी उन्हीं को कार्य करना पड़ता है। जंगलों से ईंधन एकत्रित करके लाना, धान कूटना, पानी भरना, कपड़ा बुनना आदि सब काम स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं। पुरुषों का काम तो केवल इतना ही है कि सारा दिन शिकार खेलते रहें अथवा कभी कभी मौज आने पर खेतों में कुछ काम कर लें।

नागा लोगों का भोजन भी अनोखे ढंग का होता है। जंगली शाक-भाजी के अतिरिक्त मांस बहुत खाते हैं। बिल्ली के अतिरिक्त प्रत्येक जीव का मांस खा जाते हैं। चावल तथा मछली खाने का इन्हें बड़ा चाव होता है।

नागा जाति में विवाह की रीतियां भी बड़ी आकर्षक होती हैं। विवाह के लिये केवल उसी लड़के को लड़की के योग्य समझा जाता है, जिसने कम से कम दो चार आदमियों का खून कर रखा हो। हमारी तरह इन लोगों में मां बाप को विवाह के लिये वर खोजने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। लड़का अथवा लड़की स्वयं ही एक दूसरे को पसन्द कर के अपना

जीवन साथी निश्चित कर लेते हैं। इसके बाद मां बाप की अनुमति प्राप्त करना उन दोनों का कर्तव्य होता है। यदि मां बाप उसे स्वीकार कर लें, तो लड़का अपने साथ कुछ मूल्यवान् पशु ले कर लड़की वाले के घर आता है, तथा उन पशुओं को लड़की के घर वालों को भेंट करता है। इस प्रकार परस्पर सगाई हो जाती है। इसके पश्चात एक नियत समय तक (अधिक से अधिक एक वर्ष तक) लड़के को लड़की के घर रह कर परिश्रम के काम करने पड़ते हैं। यदि इस अवधि में लड़की के घर वाले अथवा लड़की उसे परिश्रम से जी चुराते हुए देखें तो विवाह-सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, अन्यथा विवाह निश्चित हो जाता है।

नागाओं में लड़की वाले को दहेज आदि नहीं देना पड़ता अपितु स्वयं लड़का ही अपनी ओर से लड़की वालों को दहेज देता है। पर इसकी कोई सीमा नियत नहीं है। यह तो अपने सामर्थ्य की बात है। आर्थिक-शक्ति के आधार पर ही दहेज दिया जाता है। पर यह सब करने के साथ ही लड़के को लड़की के घर वालों के लिये लड़की पालने, तथा उसे दूध पिला कर विवाह योग्य बनाने का मूल्य चुकाना होता है। अलग अलग नागा-कुलों में यह कीमत भिन्न भिन्न प्रकार की होती है, जो कि अधिक नकदी के रूप में न हो कर वस्तुओं के रूप में होती है।

नागा-लोगों में सगे भाई बहनों में भी विवाह हो जाता है। इस प्रकार का कोई भी सामाजिक प्रतिबन्ध इन लोगों में नहीं होता। प्रत्येक आदमी अपने वंश की प्रत्येक स्त्री से विवाह कर सकता है। विवाह के मामले में किसी भी प्रकार की अड़चन नहीं डाली जाती। पर निकम्मे तथा परिश्रम से जी चुराने वाले लोगों को समाज-द्रोही, तथा नीच समझा जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिये केवल विवाह आदि कार्यों में ही रोड़ा नहीं अटकाया जाता अपितु सम्पूर्ण नागा-समाज उसे क्रूर-नेत्रों से देखा करता है। ऐसे आदमी के लिये वह अपने समाज में कोई स्थान नहीं रहने देते। परिश्रम करना ये अपना एक आदर्श समझते हैं। शायद जितने परिश्रम की रोटी नागा-लोग खाते हैं, अन्य प्रदेशों में इसकी मिसाल नहीं मिलती।

चरित्र की दृष्टि से भी नागा लोगों का स्तर बहुत उच्च-कोटि का है। इमानदारी तथा सच्चाई इन लोगों का प्राकृतिक स्वभाव है। ये लोग कभी भी अपने गांव की सीमा से बाहर शिकार नहीं खेलते, और यदि खेलते समय किसी अन्य गांव की सीमा में कोई शिकार हो जाये, तो उसका आधा भाग उस गांव के लोगों को दे देते हैं।

अधिकतर नागाओं का व्यवसाय कृषि ही है। ये लोग आलू, कपास, तथा चावल आदि की ही अधिक उपज करते हैं।

लगभग सभी नागाओं का व्यवसाय खेती ही है। अपने निर्वाह के हेतु सभी के पास पर्याप्त खेत होते हैं। जन-संख्या बढ़ने से जब खेती योग्य धरती की कमी हो जाती है, तो ये लोग किसी के भरोसे नहीं रहते, अपितु वनों को काट कर अपने लिये अधिक खेत बना लेते हैं। खेत के बीच में एक वृक्ष खड़ा रहने दिया जाता है, ऐसी यहां की रीति है।

नागा लोगों को भूत-प्रेत आदि में बड़ी श्रद्धा होती है, तथा समय समय पर ये लोग उनकी पूजा आदि भी करते है। जिस समय ये लोग कोई युद्ध आदि जीत कर आते हैं, तो मदिरा-पान कर के प्रेत पूजा करते हैं, तथा खूब नाचते गाते हैं।

मृत्यु आदि संस्कार करने के लिये भी इन में बड़ी अनोखी रीतियां प्रचलित हैं। नागा लोगों में एक जाति ऐसी भी होती है, जो अपने मृतक हितैषियों के शव के साथ दो भाले रख देती हैं। इनका विचार है, कि इनकी सहायता से स्वर्ग तक पहुंचने के लिये मार्ग में उसके सामने कोई विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं हो पाती।

युद्ध विद्या में प्रवीण यह जाति अभी अपना अधिक विकास नहीं कर पाई, अपितु विकास के लिये आशा लगाये बैठी है। वैसे इस जाति के बहुत से लोग विकास के पथ पर आज काफी आगे पहुंच चुके हैं। पर निरन्तर शिक्षा प्रचार जो आज भारत की सरकार इन्हें उन्नत करने के लिये कर रही हैं। अवश्य ही एक दिन इन्हें उन्नति के पथ पर ला कर खड़ा कर देगी।

मणिपुर के निवासी

लगभग ८००० वर्ग मील में फैला हुआ मणिपुर प्रदेश भारत के उत्तर पूर्व में बर्मा की पहाड़ियों के साथ साथ बसा हुआ है। यह प्रदेश इतना रमणीक है कि इस को उत्तर-पूर्वी भारत का स्वर्ग कह देना कोई बड़ी बात नहीं। इस प्रदेश के प्राकृतिक-दृश्य इतने मनोहर हैं, कि बस देखते ही बनता है। देख देख कर भी जी नहीं भरता। जिन लोगों ने भारत के इस भाग का कभी भ्रमण किया है, वे जानते हैं कि मणिपुर जैसा अनोखा प्रदेश कहीं और मिलना कठिन है। घने जंगलात, झिलमिलाते झरने; सुन्दर पहाड़ियां, अनेक प्रकार के फ़लदार वृक्ष, झीलें, चश्मे, तथा चाय के बाग़ों से परिपूर्ण यह प्रदेश वास्तव में दर्शन करने योग्य है। केवल इतना ही नहीं, अपितु यहां की प्रत्येक वस्तु रहस्य से भरी हुई है।

मणिपुर प्रदेश का लगभग १००० वर्ग मील क्षेत्र तो मैदानी है. इसके अतिरिक्त शेष सभी क्षेत्र पहाड़ी हैं। मैदानी इलाके में धान की खेती बड़े जोर शोर से होती है। परन्तु पहाड़ी क्षेत्र भी धरती के धन से रिक्त नहीं, सागोन आदि इमारती लकड़ी वहां इतनी अधिक पाई जाती है, कि बस कुछ न पूछिये। इसके अतिरिक्त चारों ओर चाय तथा रबड़ के बागों से पहाड़ियाँ सटी पड़ी हैं। शायद इस प्रदेश के समान प्राकृतिक धन से परिपूर्ण प्रदेश इस भूतल पर कम ही होंगे।"

कहते हैं, कि बरमी लोगों के आक्रमण से पूर्व यह प्रदेश इतना अधिक समृद्ध था, कि इसकी बराबरी अन्य कोई भी छोटा देश नहीं कर सकता था। इसके शाही खजाने, स्वर्ण की मुद्राओं तथा हीरे जवाहिरात से भरपूर थे, परन्तु बरमियों के आक्रमण से इस राज्य को बड़ी क्षति पहुँची और भरे हुये खजाने रिक्त दिखाई देने लगे। सभी कुछ विदेशियों ने लूट लिया, मणिपुर के शाही महल सूने हो गये। परन्तु इस देश की प्राकृतिक-दौलत को लूटना

वरमियों के वस में न था। इतिहास इस बात का साक्षी है, कि यहां के निवासी धन कुबेर थे। भले ही आज वे दीनहीन हो गये हों, परन्तु पुरातनकाल के खण्डहर तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर इसके सुनहरी अतीत का पता चलता है।

मणिपुर के शाही महल आज भी जब सेंकड़ों वर्षों की बीती हुई गौरव गाथा कह उठते हैं; तो रोंगटें खड़े हो जाते हैं। वास्तव में ऐसा लगता है कि पृथ्वी पर यदि कोई देव-भूमि है, तो वह केवल मणिपुर प्रदेश ही है। गौरव पूर्ण प्रकृति भी जिस पर ऐसी मोहित है, कि आज तक कभी भी उसकी गोद सूनी नहीं रही। उसका आंचल हीरे, मोतियों तथा अन्न के भण्डारों से सदा भरपूर रहा है। धन्य है तू हे मणिपुर प्रदेश! भारत ने तुझ पर सदा गर्व किया है। भविष्य में भी उसके नेत्र आशाओं में झूम कर तेरी ओर निहार रहे हैं।

इस प्रदेश के असली निवासियों को 'मेथे' कहा जाता है। वैसे तो इन लोगों की शकलें चीनी लोगों की भान्ति ही होती हैं परन्तु इन का डील डौल उनकी तरह नाटे क़द का नहीं होता। अपितु यह भारत के अन्य आर्य वंशजों की भान्ति ही उच्च तथा बलिष्ठ शरीर के होते हैं। इनके मुख की बनावट चीनी लोगों से कुछ कुछ मिलती जुलती है परन्तु बहुत से लोग इनमें ऐसे भी हैं, जो हमारी तरह ही सरल मुखाकृति के भी है। कारण यह है, कि वास्तव में यह आर्यों के ही वंशज हैं, परन्तु सीमा प्रदेश के निवासी होने से बाहर की जातियों से भी इन का सम्बन्ध रहा है तथा उन से विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित करने के कारण से, कुछ वंशों की मुखाकृतियां विदेशी लोगों से मिलने जुलने लगी है।

यहां पर बसने वाली 'मेथे' जाति के लोगों की मुख्य जीविका कृषि है। पर बहुत से लोग वनों में लकड़ी आदि काटने तथा ढोने का काम भी करते हैं। जगह जगह अनेक प्राकृतिक जल कुण्डों में लोगों ने मछली पकड़ने का व्यवसाय भी स्वीकार कर रखा है, क्योंकि मछली यहां का मनभाता खाजा है।

मछली का सालन तथा सुगन्धित चावल साथ साथ खाने का इन्हें बड़ा चाव होता है। यही इन लोगों का सर्व प्रिय भोजन है।

स्त्रियों को छपे हुये रेशमी वस्त्र, जरी के कढ़े हुये सुन्दर बेल बूटे दार मखमली कपड़े, रंग बिरंगी चादरें, तथा सोने के जेवर पहनने की राज्य की ओर से पूर्ण मनाही है। इसका यह अभिप्राय नहीं, कि वहां के लोगों को सामाजिक स्वतन्त्रता नहीं। यह क़ानून तो प्राचीन विद्वानों का बनाया हुआ है, जिसके अनुसार प्रजा की विलास प्रियता को दूर कर के उनके बीच, सुख शान्ति की स्थापना करना था। यह तो शास्त्रों में भी लिखा है, कि जो किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखेगा, वह किसी वस्तु का अधिकार भी नहीं मांगेगा। और जो व्यक्ति विलासी न होगा वह शरीर की शोभा बढ़ाने वाली वस्तुओं से कभी प्रीति नहीं रखेगा। प्रजा को विलास से बचाने के लिये तथा सुखी बनाने के लिये ही प्राचीन विद्वानों ने राज्य की ओर से क़ानून बनवाया था। आज अनेक वर्ष बीत जाने के पश्चात भी वही कठोर प्रतिबन्ध यहाँ की जनता का एक उच्च सामाजिक नियम बना हुआ प्रतीत होता है।

इन से स्पष्ट है, कि यहां के प्राचीन विद्वान आचरण की शुद्धि पर कितना अधिक बल देते थे। सच पूछो तो यही एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा संसार के प्रत्येक मनुष्य के जीवन को सुखी बनाया जा सकता है। मेथे जाति के विद्वानों के लोग सदाचार को जीवन की सब से बड़ी सम्पत्ति मानते थे। धन होते हुये भी यहां अपव्यय पर कितनी रोक थी। वास्तव में आज के युग के मानव में यदि कोई जाति सच्चे सुख से युक्त है, तो वह केवल यही मेथे हैं।

इस प्रदेश में स्त्रियों के लिये ही विलास-युक्त वस्तुओं के प्रयोग की मनाही नहीं है, बल्कि पुरुषों के लिये भी ऐसी ही क़ानूनी धाराएं निर्धारित हैं। पर यह तो पुरानी बातें थीं, जब क़ानून की शक्ति से इस प्रतिबन्ध की रक्षा की जाती थी। आज तो बिना क़ानून के ही यहां के लोग इस प्राचीन क़ानून को अपना धर्म मान कर इस का अनुकरण करते चले आ रहे हैं।

राजा, रानी तथा उनके अन्य घनिष्ट रिश्तेदारों को इस नियम के बन्धन में नहीं रहना पड़ता। वे यदि चाहें तो मन चाही वस्तु का उपयोग कर सकते हैं। किसी प्रकार की भी अधिक कीमती वस्तुएँ सेवन करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है। मैये लोगों के बीच यदि राजघराने के सिवाये कोई कभी ऐसी वस्तुओं का सेवन कर भी ले, तो उसे ओछा, नीच कर्मी तथा समाज का शत्रु समझा जाता है।

कृषि ही यहाँ के लोगों के जीवन का मुख्य आधार है, इसलिये पुरुषों के साथ साथ स्त्रियों को भी खेतों में काम करना पड़ता है। परन्तु इस क्षेत्र में लोगों को सिंचाई आदि के लिये हमारी तरह घोर परिश्रम नहीं करना पड़ता। फ़सल के प्रारम्भ में बीज बो देना, तथा जब तक खेती पक कर तैयार न हो जाये तब तक पशु पक्षियों तथा अन्य प्राकृतिक-आक्रमणों से उसकी रक्षा करना और फिर काट कर अपने जीवन यापन हेतु रख कर शेष धान बेच देना ही इन लोगों के वर्ष भर का कार्य है।

खेती के कार्य के काम करने के पश्चात भी वर्ष का पर्याप्त भाग इन लोगों को अवकाश रूप में पर्याप्त हो जाता है। इसलिये ऐसे समय में या तो यह लोग शिकार करते फिरते हैं और या वनों में काम करते हैं। शिकार खेलने के लिये यहाँ इतनी भारी संख्या में जंगली जानवर पाये जाते हैं, कि शिकारी लोग इस भूमि को शिकार के लिये ईश्वर की वरद भूमि समझते हैं। शेर, चीते, बारह सिंघे, जंगली बकरे, हिरन तथा बघेरों के मारे मणिपुर के जंगल भरे पड़े हैं।

अवकाश के समय यहां की स्त्रियों को भी व्यर्थ में समय नष्ट करने की आदत नहीं, अपितु ऐसे समय में वह कताई, बुनाई, सीना, पिरोना तथा कढ़ाई आदि शिल्प कार्यों में मन लगाती हैं। इन शिल्प-कलाओं में यह स्त्रियाँ पूर्ण रूप में दक्ष होती हैं।

इन लोगों में एक बड़ी अनोखी प्रथा यह है, कि यह लोग अपनी अविवाहित कन्याओं के केश कान के आगे के भाग बिल्कुल घुटाये रखते हैं। विवाहित स्त्रियों के बाल नहीं कटाये जाते। केशों को चोटी रूप में गूंथने का

रिवाज मणिपुर की स्त्रियों में नहीं है, अपितु वह बालों को कंघी से संवार कर पीछे को खुला छोड़ देती हैं, और या बंगला फैशन के जूड़े की तरह पीछे बांध लेती है। इन के गोरे गोरे स्वच्छ चमकीले शरीर पर फहराती हुई केश राशियां निराली शोभा बखेरती हैं। बंगला ढंग के मतवाले पुष्पाकृति जूड़े इतने सुशोभित होते हैं, कि देखने वाले इनका गुणगान किये बिना नहीं रह सकते।

शिर के केश बढ़ाने का चाव पुरुषों में भी है। परन्तु मूंछ तथा दाढ़ी कोई कोई ही रखता है। आज के फैशन में रंग कर कोई कोई व्यक्ति तो शिर के बाल भी कटवाने लगें हैं। बच्चों के अथवा लड़कों के सिर बिल्कुल घुटे हुए रखे जाते हैं।

नारी का स्थान मेथे लोगों में पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च तथा स्वतन्त्र समझा जाता है। परदे का रिवाज यहां की स्त्रियों में बिल्कुल भी नहीं है। पुरुषों से बात चीत करते हुये अन्य भारतीय प्रदेशों की नारियों की भांति इन्हें झिझक नहीं लगती। यहां तक कि इस क्षेत्र में स्त्रियां बड़े २ व्यापार चलाती हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश के बाजारों तथा ग्राम की हाटों में दुकानों को चलाने वाली अधिकतर स्त्रियां ही पायी जातीं हैं। ग्राहकों में भी अधिक संख्या स्त्रियों की ही दीख पड़ती है। जिस निपुणता से यह नारियां क्रय-विक्रय करती हैं उसे देख कर आश्चर्य होता है।

प्रकृति के सौन्दर्य की तरह यहां की स्त्रियां रूप तथा गुणों से युक्त हैं। भले ही यह वनों में वास करने वाली सुन्दरियां हैं, परन्तु फिर भी इन की बोल चाल, रहन-सहन, खाना-पीना, तथा परस्पर व्यवहार इतना सरल होता है, कि कहते नहीं बन पड़ता। इस प्रदेश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक विकास हुआ है।

आज हम अपने आप को इन लोगों को आदि-वासियों के समान जंगली कह कर उन की अपेक्षा भले ही कर दें, परन्तु यदि हम उनके गौरव-पूर्ण अतीत की ओर दृष्टिपात करें, तो यह स्पष्ट हो जायेगा, कि कभी उनकी सभ्यता भी संसार की एक श्रेष्ठ-सभ्यता थी। और अतीत ही क्यों ? आज भी उन के जीवन में कहीं कहीं ऐसी विशेषताएं हैं कि जिन के समक्ष हमें झुकना

पड़ेगा। यह सत्य है, कि अनेकों बातें उनके आचरण में इस प्रकार की हैं, जो आज के सभ्य समाज से कहीं अधिक उच्च तथा महान आदर्श रूप में दीख पड़ती हैं।

इस प्रदेश के निवासियों को कानों में चांदी आदि धातुओं की बालियां पहनने का बड़ा चाव होता है। यह बालियां स्त्री तथा पुरुष सभी के कानों में सुशोभित दीख पड़ती हैं। स्त्रियां इससे अधिक और तो कोई आभूषण नहीं पहनती, परन्तु नाक के दोनों ओर के नथनों में स्वर्ण अथवा चांदी की लौंगें पहनने का अधिक रिवाज है। नाक में दोनों ओर पहनी गई लौंगों को देख कर दक्षिणी भारत अथवा मद्रास आदि प्रदेशों की नारियों की याद आने लगती है, क्योंकि उन प्रदेशो की नारियां भी नाक के दोनों नथनों में लौंगें पहनती हैं। पर दक्षिणी भारत के शहरों में तो आधुनिक फैशन की समर्थक देवियों ने इस प्राचीन प्रथा का त्याग कर दिया है।

सामाजिक दृष्टि से मेथे लोगों के जीवन को तीन भागों से बांटा गया है। इसी के अनुसार उनकी आय-व्यय, खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना, उठना बैठना चला करता है। सब से पहला भाग राजा, तथा बहुत अमीर लोगों का होता है। लोग अपने सामने एक रक्त-वर्ण ऊनी वस्त्र रखा करते हैं यही इन लोगों की पहचान है। द्वितीय भाग उन लोगों का होता है, जो न तो बहुत अमीर ही हैं और न ही अत्यन्त निर्धन। ऐसे लोगों पर विलासी जीवन का सुख लूटने की पाबन्दी समझी जाती है, परन्तु राज्य की आज्ञा प्राप्त कर लेने के पश्चात् यदि लोग चाहें, तो नियत सीमा तक विलासमय जीवन बिता सकते हैं, इन लोगों की मुख्य पहचान यह है कि यह अपने समक्ष हरे रंग का ऊनी वस्त्र रखते हैं। सब से अन्त में तीसरा भाग गरीब लोगों का होता है। किसी प्रकार का भी विलासी जीवन यह लोग नहीं बिता सकते। और यदि चेष्टा भी करें, तो समाज के द्रोही समझे जाते हैं। क्योंकि ऐसा करने से उनकी रही सही आर्थिक दशा के भी बिगड़ जाने का भय होता है। इन लोगों की पहचान यह है, कि यह लोग अपने समक्ष सरल साधारण सूती वस्त्र रखते हैं। इस प्रकार से आर्थिक सन्तुलन स्थापित करने

के लिये यहां के पूर्वजों ने कितना उच्च कोटि का सामाजिक विधान बनाया है। जिससे इनके पूर्वजों की महानता को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

अब प्रश्न यह उठता है, कि इन लोगों के वह पूर्वज कौन थे? जिनके आदर्शों की पूजा करने को जी चाहता है, और जिन्होंने मणिपुर समान स्वर्ग-भूमि में अपना वास रखा और यहां एक श्रेष्ठ तथा उच्च कोटि की सभ्यता की स्थापना की जिनके अस्तित्व ने यहां सोने पर सुहागे का सा काम किया। जिन पूर्वजों ने इस प्रदेश को अग्नि से तप कर निखर पड़ने वाले स्वर्ण के समान शुद्ध तथा श्रेष्ठ भूमि बना दिया था, वास्तव में उन को जानने के लिये कौन उत्सुक नहीं होगा।

आप यह जान कर गर्व अनुभव करेंगे, कि वह महान आत्मायें हमारे ही पूर्वज प्राचीन आर्य थे। वही आर्य जिन की सर्व-श्रेष्ठ सभ्यता जगत प्रसिद्ध है, वास्तव में मैथे लोग यहां के आदिवासी नहीं। कुछ कारणों से इन लोगों ने हम से पिछड़ कर तथा अन्य आदिवासियों का सम्पर्क पा कर हम से संकोच करना आरंभ कर दिया इसीलिये अन्य भारत-वासियों ने इन की ओर अधिक ध्यान न दे कर इन्हें आदिवासी समझ लिया, और चिर-काल से समझते आ रहे हैं।

महाभारत के श्रेष्ठ ग्रंथ में इस प्रदेश का प्रमाण मिलता है। तथा उसमें भी यहां आर्य राज्य की झलक दिखाई गई है। उसे एक प्रकार से पृथ्वी का स्वर्ग बताया गया है, तथा वहां आर्यों के ही वास का उल्लेख किया गया है।

इतिहासकारों का मत है, कि पहले इस प्रदेश का नाम मनिद्रपुर था। तथा अन्य कथाओं से भी यह पता चलता है। प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है, कि महाभारत में प्रसिद्ध नायक धनुष-धारी अर्जुन ने महाराजा द्रुपद की शर्त पूरी कर के राजकुमारी द्रौपदी से विवाह रचाया। और एक तरह से द्रौपदी पर पांचों पांडवों का अधिकार निश्चित हुआ। परन्तु एक ही समय द्रौपदी सभी भ्राताओं के पास नहीं रह सकती थी। इस लिये देवर्षि नारद की सम्मति से यह निश्चय किया गया, कि जब तक एक भ्राता द्रौपदी

के साथ एकान्त में रहेगा, तब तक अन्य किसी भी भ्राता को उनके स्थान पर जाने का अधिकार नहीं होगा। जो भी भ्राता इस नियम को तोड़ेगा, उसे बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा।

एक समय जब युधिष्ठिर द्रौपदी से बातें कर रहे थे, और अर्जुन महल के बाहर टहल रहे थे, तभी एक ब्राह्मण ने आकर अर्जुन से कहा कि कुछ दुष्ट लुटेरों ने मेरी गायें छीन ली हैं। तुम दौड़ कर उन्हें बचाओ। अर्जुन सहायता करने के लिये अपने अस्त्र लाने दौड़े, परन्तु तभी उन्हें ज्ञात हुआ, कि जिस कमरे में धर्मराज बैठे द्रौपदी से बातें कर रहे हैं। उसी में उसके अस्त्र शस्त्र पड़े हैं। यह सोच कर अर्जुन बड़े परेशान हो गये। क्योंकि यदि वह ब्राह्मण की रक्षा न करें, तब उन्हें पाप का भय होता है और यदि कमरे में जाते हैं, तो नियम टूटता है। पर कर्तव्य के समक्ष उन्हों ने नियम को तुच्छ समझा और तुरन्त कमरे में से अस्त्र ला कर ब्राह्मण की गायें छुड़ा लाये। परन्तु नियम का उल्लंघन करने पर शेष भ्राताओं ने अर्जुन को अपने से अलग कर दिया।

भ्राताओं से अलग हो कर अर्जुन नियमानुसार १२ वर्ष के लिये वनवास भोगने चल दिये। यह सब कष्ट अर्जुन ने सहर्ष भोगना स्वीकार किया। बड़े बड़े कष्ट सहे, परन्तु इसका उन्हें तनिक भी खेद न हुआ। इसी प्रकार काफी दिन बीत गये। और इन दिनों में भारत-श्रेष्ठ अर्जुन वनों की धूल छानते हुये, न जाने कहां से कहां जा पहुँचे।

वन में एक दिन अर्जुन एक नदी में स्नान करने के लिये उतरे कि नाग कन्या 'उलूपी' भी वहीं कहीं निकट ही जल-विहार कर रही थी। उसने जब इस श्रेष्ठ तथा सुन्दर प्राणी को देखा, तो मोहित हो गई, तथा किसी भी प्रकार इन्हें प्राप्त करने का निश्चय किया और तुरन्त स्नान मग्न अर्जुन की टांग पकड़ कर जल के भीतर ही भीतर खींचती हुई उन्हें अपने महलों में ले गई। अर्जुन ने भी जब उलूपी को देखा, तो वह उन्हें परम सुन्दरी प्रतीत हुई, और वह उस से प्रेम करने लगे। अर्जुन समान वीर के असीम प्रेम ने उलूपी को पागल बना दिया, और उसने प्रसन्न होकर अर्जुन को वरदान

दिया, कि अब आपको किसी भी जलचर प्राणी से भय नहीं रहेगा। कुछ वर्ष बिताने के पश्चात अर्जुन मनीद्रपुर पहुँचें। तथा वहां के राजा चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा से विवाह कर लिया। परन्तु विवाह से प्रथम राजा ने अर्जुन से एक प्रतिज्ञा कराई थी, जिसके अनुसार उसके होने वाले पुत्र पर राजा ने अपना अधिकार निश्चित किया था। कारण यह था, कि उसके अपना कोई पुत्र न था। इसलिये चित्रांगद के गर्भ से उत्पन्न अर्जुन पुत्र ही मनीद्रपुर का प्रथम आर्य राजा हुआ।

मनीद्रपुर के इस प्रथम सम्राट का नाम वीर बभ्रुवाहन था। बभ्रु-वाहन के पश्चात सुप्रवाहू, तथा पाखवावा आदि राजा हुये। पाखवावा ने ही नाग देश पर विजय प्राप्त करके नाग-राज से नाग-मणि प्राप्त की थी। तभी से इस प्रदेश का नाम मणिपुर पड़ गया। हो सकता है, कि नाग-देश भी उस समय आजके नागा प्रदेश को ही कहा जाता हो। क्योंकि यह प्रदेश मणि पुर के निकट ही स्थित है।

मणिपुर प्रदेश में 'सिलचार' नामी एक रेलवे स्टेशन भी है। यहां आ कर भारतीय रेलवे लाइन समाप्त हो जाती है। मणिपुर प्रदेश में और आगे जाने के लिये, मोटरों द्वारा पहुँच जाता है। परन्तु अधिकतर भाग पहाड़ी होने के कारण सड़कों का प्रबन्ध नहीं,इसलिये बहुत से स्थान ऐसे भी है, जहां पैदल चल कर जाना पड़ता है। 'इम्फाल' इस प्रदेश का सब से बड़ा नगर तथा राजधानी है। वैसे तो इस नगर का नाम इम्फाल ही अधिक प्रचलित है, परन्तु यहां के मेथेगण, उसे अपनी प्रादेशिक भाषा में 'सेना कैथल' कहते हैं। यह नगर पर्वत खण्ड पर बसाया गया है। आर्य-सभ्यता के समर्थकों के साथ यहां आजके योरुपियन-सभ्यता के पुजारी भी प्रायः दिखाई देते हैं।

यहां के लोग अपना भोजन अधिकतर मिट्टी के पात्रों में ही बनाते हैं। कहते हैं, कि धातुओं के बने बर्तनों में पकाने से खाद्य-पदार्थ का सारा मिठास तथा शक्ति नष्ट हो जाती है, परन्तु आजकल कुछ लोग धातु के बर्तनों में ही खाना पकाने लगे हैं। यह सब फैशन तथा योरुपियन ढंग में घुल मिल जाने का प्रभाव है।

मैथे लोगों के जीवन में एक चीज बड़ी महत्वपूर्ण है। जिस पर समाज की ओर से पूर्ण स्वतन्त्रता है, और वह है नृत्य। यहाँ के कला से भरपूर नृत्य जगत-प्रसिद्ध हैं। यहाँ विवाह से पहले कन्याओं को नृत्य सिखाना उतना ही आवश्यक समझा जाता है, जितना कि गृहस्थ के अन्य कार्य सिखाना, गृहस्थ जीवन में नृत्य को एक श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। परन्तु इस प्रदेश में इसे व्यवसाय रूप में प्रयोग करना, तथा बाजारों आदि में प्रदर्शित करने के लिये पूर्ण सामाजिक प्रतिबन्ध है। भारतीय नृत्य-कला आज भी इन लोगों के पास सुरक्षित हैं, जिस पर हमें सदा गर्व रहेगा। विवाह आदि अवसरों पर जब स्त्रियाँ अपनी सखियों के बीच इस कला का शास्त्रीय-रीति से प्रदर्शन करती हैं, तो अपनी इस भारतीय गौरव पूर्ण कला के सामने जगत की अन्य नृत्य कलाएँ फीकी प्रतीत होती हैं,

यहाँ के सभी जन अधिकतर हिन्दू धर्म को ही मानने वाले हैं, तथा अपने देवताओं में पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। इन लोगों का सब से बड़ा धार्मिक त्यौहार 'लाई हरोबा' है, जिसे ये लोग बड़ी धूमधाम से मनाते हैं तथा उसके उत्सव में श्रद्धा पूर्वक भाग लेते हैं। इस त्यौहार के दिन किसी भी आदमी पर किसी भी प्रकार की पाबन्दी नहीं रहती। हर एक व्यक्ति को सर्व प्रकार की सामाजिक स्वतन्त्रतायें प्राप्त होती हैं। इस अवसर पर ग़रीब भी सोने चाँदी के अलंकार, अमूल्य वस्त्र तथा अन्य विलास पूर्ण वस्तुओं का उपभोग कर सकता है। परन्तु केवल उसी दशा में जब कि वह उसे पाने में समर्थ हो। स्त्रियों के नृत्य प्रदर्शनों पर भी किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। इस अवसर पर अमीर लोगों की स्त्रियाँ एक अनोखे प्रकार की टोपी पहनती हैं, जिसे पहनने से उसकी शोभा निखर उठती है। नगर में इस त्यौहार से सम्बन्धित सभी तरह के खेल तमाशों का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता है। नौकाओं की दौड़ें होती हैं, जिसमें विजयी होने वालों को राज्य की ओर से बड़े बड़े पुरस्कार दिये जाते हैं। इस अवसर पर मणिपुर निवासियों के हृदय में एक नई उमंग होती है। वर्ष भर के रुके हुए अरमान इस दिन निकाले जाते हैं। स्त्रियों के शृंगार को देख कर कामदेव भी झूम उठते हैं।

यह है मणिपुर प्रदेश तथा उसके दूर स्थित निवासियों की कहानी। जो स्वर्ग प्रदेश के निवासी हैं। जिनके पूर्वज हमारे ही पूर्वज थे। किन्तु आज वह हम से कितने भिन्न हो गये हैं। कितने अनोखे ? पर आज विश्व में उन्नति का सिंहनाद बज उठा है। और वह दिन दूर नहीं, जब वह हमें अपना समझ कर हम में मिल जायेंगे। भारत को ही अपनी मातृ-भूमि समझ कर उसी के लिये जियेंगे, और उसी के लिये मरेंगे।

लुशाई प्रदेश के निवासी

लुशाई प्रदेश आसाम की उत्तरी सीमान्त पहाड़ियों पर फैला हुआ है। घोर वनों के कारण यहां के मार्ग बड़े ही भयानक हैं। वर्षा इतनी अधिक होती है, कि इस प्रदेश में एक स्थान से दूसरे पर जाना कठिन हो जाता है। यहां के पुराने रहने वाले मनुष्य इन परिस्थितियों से हिल मिल गये हैं। इसलिये उन्हें तो सम्भवतः इसी में सुख मिलता है। बड़ी से बड़ी प्राकृतिक-कठिनाइयों को सहन करने की इन लोगों में शक्ति होती है।

लुशाई प्रदेश में जो मानव जाति निवास करती है, उसे 'कुकी' कहते हैं। कुकी लोग भी भारत के आदिवासियों का ही एक अंग गिने जाते हैं। यह बात निश्चय पूर्वक नहीं कही जा सकती कि वास्तव में ये किन विचित्र आदिवासियों के वंशज हैं, और इन का धर्म कौन-सा है, क्योंकि इस बारे में विद्वानों के भिन्न २ मत हैं, परन्तु यह कहा जा सकता है, कि शायद ये लोग स्वयं भी अपने धर्म तथा जाति के बारे में सर्वथा अनभिज्ञ हैं।

ये लोग नागा जाति के लोगों से भी अधिक हिंसक समझे जाते हैं। भारत की आधुनिक या प्राचीन किसी भी सभ्यता का प्रभाव इन पर क्यों नहीं पड़ सका, इसका अनुमान करना कठिन है, क्योंकि इन लोगों के चारों ओर बसने वाली किसी भी सभ्य जाति का प्रभाव इन पर दिखाई नहीं देता। इन लोगों का जीवन जगत से न्यारा, असभ्य और प्राय: वनवासी जैसा है।

भारत की पिछड़ी हुई जातियों में लुशाई प्रदेश की यह कुकी जाति सब से अधिक पिछड़ी हुई समझी जाती है। नागा लोगों में तो पहले की अपेक्षा अब काफ़ी उन्नति हो रही है, किन्तु यह कूकी लोग अभी अपने को उन्नति के पथ पर खड़ा नहीं कर सके। वैसे भारतीय राज्य की ओर से अब इन्हें भी शिक्षित तथा सभ्य बनाने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता

है कि वे दिन दूर नहीं जब कि भारत की कोई भी जाति असभ्य नहीं रहेगी। आज इन कुकी लोगों के जीवन की चर्चा कहते हुए हमें खेद होता है, किन्तु इन के भविष्य की कल्पना आशा का संचार करती है।

यह कुकी लोग, चाहे आज कितने ही पिछड़े हुए क्यों न हों, तो भी यह वर्ग हमारा ही एक अंश है। भारत की भूमि पर जन्म लेकर भी वह आज अपने आप को हम से भिन्न भले ही समझें, किन्तु जब ज्ञान और शिक्षा की ज्योति उनके मस्तिष्क में प्रकाश फैलायेगी, तो इन्हें अवश्य ही जागना पड़ेगा। और तब इन्हें प्रतीत होगा, कि वे अपने ही भाइयों के पास रह कर भी उन से दूर रहे हैं। और वे कूएं के मेंडक की तरह जीवन व्यतीत नहीं करेंगे। उन में देश प्रेम की लहर उठेगी। हम और वह भली प्रकार समझेंगे कि भारत ही अपना एक मात्र देश है। इसी के लिये हमने जीना और इसी के लिये मरना है। और तब कितना उज्जवल होगा भारत का भविष्य !

इन कुकी लोगों का सामाजिक जीवन भी बड़ा विचित्र है। इनके रीति रिवाज भी बड़े अनोखे हैं। मृत्यु आदि संस्कार तो इनके बड़े ही विचित्र हैं। इस जाति का जब कोई व्यक्ति मरता है, तो उसके शव को घर के किसी खुले कमरे में साफ़ तथा सुन्दर कपड़ों में लपेट कर लिटा देते हैं। इसके पश्चात सम्पूर्ण सगे सम्बन्धियों को मृत्यु का समाचार भेज कर बुलवाया जाता है। जब सब प्रिय जन एकत्रित हो जाते हैं, तब शव को यत्न पूर्वक सजा कर उसके सीधे हाथ की ओर उस का कोई प्रिय हथियार रख दिया जाता है तथा दूसरी ओर उसकी विधवा स्त्री को बिठा दिया जाता है। वहां बैठ कर वह विलाप करती है। इसके पश्चात एक भोज होता है, तथा समस्त एकत्रित जन उसमें सम्मिलित होते हैं। भोजन करने से प्रथम थोड़ा सा भोजन मरे हुए व्यक्ति के पास भी रखा जाता है, तब एक प्रधान व्यक्ति खड़ा हो कर उस से खाने के लिये प्रार्थना करता है। इसके बाद ही अन्य लोगों को भोजन करने की आज्ञा मिलती है, यह सभी कार्य इस धारणा को लेकर किये जाते हैं, कि मनुष्य मृत्यु के पश्चात

एक बहुत बड़ी यात्रा के लिये जाता है, और यदि वह उस यात्रा पर भूखा ही रहा, तो वह भूख के कारण व्याकुल हो कर अपनी यात्रा पूर्ण नहीं कर पायेगा और उसे बड़ी २ विपत्तियां झेलनी पड़ेंगी।

तम्बाकू पीने का इन लोगों में बहुत प्रचार है। बच्चे बूढ़े सभी इस का चाव रखते हैं। इसी लिये इन लोगों में मरे हुये व्यक्ति को भी तम्बाकू पिलाने का रिवाज है। ऊपर कहे, सभी संस्कार करने में अधिक से अधिक दो दिन लगते हैं। इसके बाद मृत-जन के शव को धरती में किसी साफ स्थान में गाड़ दिया जाता है।

कुकी लोगों में एक ही नहीं अपितु कई जातियां हैं, जिन के रीति-रिवाज भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। इन्हीं की एक अन्य जाति है, जिसमें मृत-जन के शव को लकड़ी के एक खोखे में लिटा कर खुली हवा तथा सूर्य के प्रकाश में मिट्टी से लीप कर सूखने के लिये रख देते हैं। यह केवल इस लिये किया जाता है, कि उसके सभी सम्बन्धी आकर एक बार तो उस से अवश्य मिल जायें, क्योंकि इस प्रदेश में यातायात के साधन मिलने दुर्लभ हैं, इसलिये सारी यात्रा पैदल ही की जाती है। मृत्यु का समाचार पहुँचाने तथा उसके सगे सम्बन्धियों को बुलाने में कई कई महीने लग जाते हैं और जब तक उसके सभी सम्बन्धी उसे आकर नहीं देख जाते, तब तक उस का अन्तिम संस्कार नहीं किया जाता। जब सब सम्बन्धी आ कर उसे मिल जाते हैं, तब उस के शव को धरती खोद कर यत्न पूर्वक गाड़ दिया जाता है।

कुकी लोगों की एक और जाति में मृत्यु आदि संस्कार करने की एक बड़ी ही विचित्र प्रथा प्रचलित है, जिसे सुन कर आश्चर्य होता है। इस जाति के लोग अपने मृत-जन के शव को घर की दहलीज में छत से लटका देते हैं, तथा उसकी विधवा पत्नी को उस शव के नीचे बिठा दिया जाता है जहाँ सप्ताह भर उसे चर्खा कातना पड़ता है। इन सात दिनों में यह स्त्री कहीं भी आ जा नहीं सकती। उसका शव के नीचे से उठकर कहीं जाना बड़ा ही

पाप समझा जाता है। इसलिये उस स्त्री की एक ही स्थान पर चर्खा कात २ कर बुरी दशा हो जाती है। पर इतनी खैर है, कि उस स्त्री के भोजन आदि पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता। शव के नीचे बैठी हुई भी वह प्रति दिन की तरह अपना भोजन कर सकती है। सात दिन के बाद शव को उतार लिया जाता है। उसका शीश तो काट कर घर में रख लिया जाता है, तथा शेष शरीर को मिट्टी में गाड़ दिया जाता है।

कैसी विचित्र रीति है इन के समाज की ? इनके सामाजिक प्रतिबन्ध तथा उसके नियम इस बात का प्रमाण हैं, कि कभी अतीत में इनका समाज भी गौरवमय रहा होगा। इन की अपनी भी एक दुनियाँ होगी। पर कहाँ मिट गया वह सब ? कहाँ खो गई वह दुनियाँ ?

कुकी लोगों की स्त्रियाँ ही गृहस्थी के खाने-दाने तथा अन्य सभी आवश्यक कार्यों का प्रबन्ध करती है। ईंधन एकत्रित करना, खेती करना, बच्चों का पोषण करना आदि सभी गृहस्थ के कार्य केवल स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं, पुरुषों का काम तो केवल इतना ही है, कि आवश्यकता पड़ने पर कभी वन काट कर भूमि एक सी कर दी अन्यथा इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण संसारिक कार्य स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं, कि पुरुष सारा दिन घर पड़े आराम किया करते हैं। घर में तो इन लोगों का जी बिल्कुल नहीं लगता। हर समय युद्ध करने के लिये व्याकुल फिरा करते हैं। युद्ध करना ही इस प्रदेश के पुरुषों का एक मात्र मुख्य कार्य है।

युद्ध कला में ये लोग इतने प्रवीण होते हैं, कि जहां निशाना लगाया, उसे साफ़ ही समझिये। यदि यह लोग शिक्षित हो जायें, तो देश के लिये अत्यन्त प्रवीण सैनिक सिद्ध हो सकते हैं।

जब ये लोग युद्ध के लिये जाते हैं, तो इनके बड़े-बूढ़े श्रद्धा-पूर्वक आशीर्वाद देकर इन्हें विदा करते हैं। यदि ये लोग युद्ध में जीत जायें तो सभी मरे हुये शत्रुओं के शीश उतार कर अपने साथ ले आते हैं। रास्ते में घर को लौटते हुये रंग बिरंगी पगड़ियाँ पहने, नाचते कूदते हुए जब ये नर मुण्डों

को उठाये हुए आते हैं, तो सारे वातावरण में भय का संचार हो जाता है। जब ये लोग अपने गांव से कुछ दूरी पर रह जाते हैं, तो सभी लोग इन के स्वागत को शराब लेकर जाते हैं। जहां विजय की खुशी में मदिरा पान होता है। विवाहित पुरुषों की पत्नियां अपने स्वामियों के हाथ पहले मदिरा के जल से धुलाती हैं। इन का विचार है, कि ऐसा करने से उसका खूनी पति पवित्र हो जाता है, अन्यथा खूनी पति को कोई भी पत्नी स्वीकार नहीं करती। यदि वह ऐसा नहीं करती, तो वह पतित हो जाती है। इसी धारणा के अनसार पहले स्त्री का विजयी पुरुष के हाथ धुलाना ही मुख्य कर्तव्य है, इसके पश्चात दोनों पति पत्नी जी भर कर एक दूसरे को मदिरा पान कराते हैं।

अपने गांव में पहुँच कर यही विजयी पुरुष सब से पहले अपने घरों को न जा कर अपने सरदार के घर जाते हैं। तथा वहां उन सभी शत्रु-मुण्डों का ढेर लगा देते हैं। उसके चारों ओर खूब नाचते कूदते हैं। इस समय इतनी अधिक शराब पी जाती है, कि यह लोग नशे में मस्त होकर बेहोश होने लगते हैं।

आलसी पुरुषों से यहां बड़ी घृणा की जाती है। उन्हें हर समय स्त्रियों का गुलाम बना कर खेती के काम में लगाया जाता है। ऐसे पुरुष से कोई भी स्त्री अपना विवाह करना पसन्द नहीं करती। उसे सदा नामर्द समझा जाता है। किसी भी कार्य में उसकी कोई राय नहीं ली जाती। सामाजिक सभाओं में बैठने का अधिकार उसे नहीं दिया जाता।

लुशाई प्रदेश में सम्पूर्ण कार्य स्त्रियों को ही करने पड़ते हैं, परन्तु फिर भी उन पर किसी प्रकार का कोई अनुचित दबाव नहीं डाला जाता। उन्हें हर काम करने के लिये पूर्ण रूप की स्वतन्त्रता होती है। शादी विवाह आदि मामलों में भी लड़कियों को अपने चुने हुये पति से ही विवाह करने का अधिकार होता है। इस में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं उठाई जाती।

कुकी लोगों का स्वभाव युद्ध-प्रिय होने से उनके जीवन की अनेक बातें ऐसी हैं, जिसे हम आज के सैनिक-जीवन में देखते हैं। सरदार के

हुक्म का पालन करना यह लोग अपना परम धर्म समझते हैं। वह ठीक कहे अथवा ग़लत, इस चीज़ से इन्हें कोई सरोकार नहीं होता, इन का कार्य तो केवल उसका पालन करना ही होता है, चाहे उसकी कीमत इन्हें अपना रक्त देकर ही क्यों न चुकानी पड़े, तो भी ये लोग कभी उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते। मौखिक आज्ञा के अतिरिक्त कुछ विशेष आज्ञायें, सिगनैलिंग (Signalling) के द्वारा भी दी जाती हैं जिस के अनेक चिन्ह इन्हें मालूम होते हैं। उदाहरणतः जब कोई व्यक्ति अपने सरदार का अनेक अलंकारों से सुसज्जित भाला हाथ में झुका कर गांव में फिरे, तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि गांव के प्रत्येक पुरुष को सरदार ने तुरन्त अपनी बैठक पर उपस्थित होने की आज्ञा दी है। और पलक की झपकी में ही ये लोग वहां एकत्रित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अनेक चिन्ह इन लोगों में आज्ञाओं के लिये प्रचलित हैं। इन बातों को देख कर निश्चय से कहा जा सकता है कि यदि इन लोगों को शिक्षित करके उन्नति के पथ पर चलाया जाये, तो ये लोग अपने देश के प्रसिद्ध तथा योग्य सिपाही सिद्ध हो सकेंगे।

लुशाई प्रदेश के इन कुकी लोगों में सब से अधिक आदर गांव के सरदार को ही प्राप्त होता है। सरदार की स्त्री यदि किसी कुकी को अपना पुत्र बना ले, तो उसका भी बड़ा आदर होता है। यहां तक कि यदि पुत्र बना हुआ व्यक्ति भयंकर से भयंकर अपराध भी कर डाले, तो भी उसे दण्ड नहीं दिया जाता।

लुशाई प्रदेश के इन लोगों को पैदल यात्रा तय करने का बड़ा अभ्यास होता है। इनकी चाल इतनी तेज होती हैं, कि शायद दुनियां की कोई भी जाति चलने के प्रश्न पर इन से कभी बाजी नहीं मार सकती। जितनी देर में हम एक मील की दूरी तय करते हैं, उतनी देर में ये लोग पांच मील के अन्तर पर पहुंच जाते हैं। शायद आज के जगत में इनके बराबर कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जो इन के साथ चलने में मुक़ाबला कर सके।

अराकान प्रदेश के निवासी

अराकान प्रदेश भारत की उत्तर-पूर्वी सीमाओं पर बर्मा राज्य के साथ साथ फैला घोर वनों से पटा हुआ एक पहाड़ी प्रदेश है। वर्षा के दिनों में इन पर्वतों पर इतनी अधिक वर्षा होती है, कि सभी यातायात के साधन रुक जाते हैं। घोर वनों के कारण मार्ग इतने कठिन हैं, कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना बड़ा असम्भव प्रतीत होता है। घने जंगलों में जंगली जानवर भी भारी संख्या में पाये जाते हैं।

जिन अराकानी-वासियों का इस देश में वास है, उन में दो जातियां, 'चकमा' तथा 'खोंग' ही श्रेष्ट तथा प्रसिद्ध गिनी जाती हैं। किसी समय ये लोग आर्य धर्म को मानने वाले थे किन्तु अब बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। वर्मा के समीप होने से इन के सामाजिक तथा व्यावहारिक जीवन पर उन्हीं का विशेष प्रभाव पड़ा है। इतना कुछ होते हुये भी अपनी प्राचीन संस्कृति को इन लोगों ने नहीं विसारा तथा आज भी उसी का अनुकरण करते चले आ रहे हैं।

यहां की सभी जातियां बौद्ध धर्म को मानने वाली है, किन्तु हिन्दू धर्म की भी ये लोग कभी उपेक्षा नहीं करते। और रहा बौद्ध धर्म, सो वह तो आज इनका अपना धर्म है। बौद्ध धर्म के उपासक हो कर भी यह लोग हिन्दू धर्म के देवताओं में समान की श्रद्धा रखते हैं और उनकी पूजा करते हैं।

'चकमा' जाति तथा 'खोंग' जाति के लोगों की वैवाहिक-रीतियों का उल्लेख करने से पहले उनका इतिहास लिख देना आवश्यक है, कि ये लोग कौन थे, तथा किस प्रकार इस पिछड़ी हुई दशा को प्राप्त हुए? क्या इनका अतीत कभी उन्नति के पथ पर था? ये ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

वास्तव में यहां की चकमा जाति के लोग, पुराने ज़माने के ऐतिहासिक राज्य चम्पानगर के रहने वाले थे। चीन के प्रसिद्ध यात्री हुएनसांग ने भारत

में जो अपना शाखा लेख लिखा था, उस से पता चलता है, कि आज के भागलपुर प्रदेश ही में पुरातन काल का चम्पानगर राज्य था। न जाने किस कारण अराकान के राजा ने चम्पानगर पर आक्रमण कर दिया। उस समय चम्पानगर राज्य 'शाक्यमोंग' क्षत्रियों के राजा के अधिकार में था। 'शाक्य-मोंग' लोगों ने बड़ी वीरता से अराकानी सेनाओं का मुकाबला किया, किन्तु अथक वीरता दिखाने के पश्चात् भी वे जीत न सके। अराकानी सेनाओं ने इन्हें बन्दी बना लिया, तथा राज्य की आज्ञा अनुसार इन्हें अराकानी जंगलों में रहने वाले जंगली मानवों के बीच छोड़ दिया गया। जहां प्रारम्भ में तो इन लोगों को भारी विपत्तियों का सामना करना पड़ा, परन्तु कुछ दिन बाद जब ये लोग वहां के आदिवासियों के जीवन से घुल मिल गये, तो इनकी कठिनाइयां दूर हो गईं।

समय बीतता गया, और इन लोगों की घनिष्टता परस्पर बढ़ती ही गई। अन्त में इन लोगों के विवाह आदि संस्कार भी इन्हीं लोगों के साथ होने लगे। दो भिन्न विचारों के मानव परस्पर मिल कर अपने वास्तविक रूपों को छोड़ कर एक रूप होने लगे। आदिवासियों का संपर्क पा कर यह शाक्य-मोंग लोग अपनी उच्च आर्य सभ्यता से विमुख हो कर पिछड़ गये। यह तो रहा शाक्य-मोंग लोगों का हाल, इसके विपरीत अराकानी आदिवासियों की दशा सभ्य लोगों के संपर्क से बहुत कुछ सुधर गई।

आदिवासियों की उन्नति, तथा शाक्य-मोंग वंशजों का पतन धीरे धीरे होता रहा। किन्तु एक समय ऐसा आया जब दोनों जातियां परस्पर इतनी घुल मिल गईं कि इनका भेद मिटने लगा कि कौन आदिवासी हैं, तथा कौन सभ्य आर्य। विवाह आदि सम्बन्ध परस्पर हो जाने से तो इन के वर्ण भी घुल मिल कर किसी तीसरी ही प्रकार के हो गये। एक दूसरे ने अपने रीति-रिवाजों को भी एक दूसरे में मिश्रित कर दिया। इस प्रकार यह जातियां भारत की सभ्यता के निकट रह कर भी उस से दूर चली गईं, किन्तु अपनी आर्य संस्कृति की छापों को इन लोगों ने अपने जीवन से हटने नहीं

दिया। तभी तो हजारों वर्ष बीत जाने के पश्चात, आज भी ये लोग अपने महान अतीत पर गर्व करते हैं।

'चकमा' शब्द वास्तव में 'शाक्य-मोंग' शब्द का ही बिगड़ा हुआ स्वरूप है। क्योंकि पुरातन काल में जब इन लोगों को बन्दी बना कर अराकान के घने जंगलों में वहां के पिछड़े हुये आदिवासियों के बीच छोड़ा गया था, तो ये लोग अपने आप को एक बहुत बड़ी मुसीबत में फंसा हुआ समझते थे। एक तो हर समय आदिवासियों के बीच रहना। उन की भाषा खान-पान, आचार-विचार तथा, रहन-सहन आदि सभी कुछ ठीक प्रकार समझ न पाने पर इन्हें बड़ी कठिनाई अनुभव होती थी। प्रारम्भ में तो आदिवासी इन्हें शत्रु समझ कर इनके प्राणों के भूखे हो गये। परन्तु धीरे धीरे उन्हें इन लोगों को अपने बीच मिलाना ही पड़ा, तथा उन्होंने अपनी ही भाषा के मिश्रण से शाक्य-मोंग का अपभ्रंश कर डाला जो सब से प्रथम तो 'चाक्यमों' बना, और फिर धीरे धीरे बिगड़ता हुआ 'चकमा' रह गया।

इसी प्रकार खोंग' जाति के लोगों का भी अपना इतिहास है। विद्वानों तथा जानकारों का मत है, कि यहां के आदिवासियों की वास्तविक संतानें ही 'खोंग' जाति के लोग हैं। इनकी अपनी भाषा है, तथा उसकी लिपि भी अजीब ही प्रकार की है। जिसे अराकानी लिपि भी कहते हैं। खोंग जाति के लोगों की अपनी लिपि इस बात का प्रमाण है, कि कभी यह अवश्य ही सुशिक्षित रहे होंगे। पर परिस्थितियों वश यह लोग अन्य सभ्य जगत से पिछड़ कर अंधेरी दुनियां में ही रह ये। यदि यह लोग पूर्ण रूप से भयंकर जंगली मानव होते, तो शाक्यमोंग लोगों के इस प्रदेश में आगमन पर एक भीषण संग्राम मच जाता, जिससे या तो शाक्यमोंग वंशियों का नाश हो जाता, और या यह आदिवासी ही जन्म-भूमि का परित्याग कर कहीं अन्यत्र चले जाते।

यह सत्य है, कि उस दिन के अराकानी चम्पानगर के शाक्यमोंग लोगों की भांति वे लोग अधिक सभ्य नहीं थे, किन्तु इतने पिछड़े हुये भी नहीं थे, जो कि पूर्ण रूप से जंगली हों। संभव है, कि वे किन्हीं अज्ञात कारणों-वश

उन्नति शील जगत से पीछे रह गये हों, परन्तु इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता, कि इससे पहले कभी वे किसी वैभवशाली सभ्यता के अनुयायी अवश्य रहे थे।

चकमा जाति के लोगों में विवाह रीतियां जिस अनोखे प्रकार से प्रस्तुत की जाती हैं, वह भी उल्लेखनीय है। उत्तरी भारत के आर्य वंशजों की तरह इन लोगों में कन्या के लिये वर की खोज कन्या का पिता नहीं करता बलिक पुत्र के जवान होने पर पुत्र के पिता को ही उसके लिये किसी योग्य वधू की आवश्यकता अनुभव होती है। जब कोई कन्या उसकी दृष्टि में अपने पुत्र की वधू बनाने के योग्य सिद्ध होती है, तो वह स्वयं लड़की के बाप के पास एक 'आस' ले कर जाता है। तथा उसके द्वार पर पहुंच कर वह लड़की के पिता को अपना परिचय देकर कहता है, 'मैं आप के पास एक आस ले कर आया हूँ। आशा है आप निराश नहीं करोगे।" और फिर मूल-प्रसंग से उसे परिचित कराता है। इस पर लड़की का पिता सम्पूर्ण गांव वालों की पंचायत बुलाता है, जिसमें गांव के सभी प्रतिष्ठित जन एकत्रित होते हैं। यदि उनके समक्ष लड़की वाला अपनी पुत्री उसके पुत्र के साथ व्याहने को राजी हो जाये, तो फिर लड़की की कीमत निश्चित होती है। कीमत का अर्थ यह नहीं है, कि लड़की का बाप लड़के वाले से लड़की का सौदा करता हो, और उसकी कीमत मांगता हो, अपितु इसका अर्थ यह होता है, कि यदि उसकी पुत्री की मृत्यु लड़के अथवा उसके पति के अत्याचारों द्वारा हो, जैसे, किसी अपराध से रुष्ट हो कर वह उसका खून कर डाले। तो यही निश्चित किया हुआ मूल्य चुका कर उसे सामाजिक बन्धनों से पीछा छुड़ाना पड़ता है। अन्यथा उसे ज़ालिम, खूनी, समाजद्रोही समझ कर गांव तथा जाति दोनों से पृथक कर दिया जाता है। लड़की का यह मूल्य डेढ़ सौ रुपये से ऊपर किसी भी राशि तक निश्चित किया जा सकता है। वास्तव में यह मूल्य लड़की तथा लड़के वाले दोनों की आर्थिक दशा को ध्यान में रखते हुये निश्चित किया जाता है। इस बात का पंचायती सदस्य विशेष ध्यान रखते हैं, कि यह मूल्य किसी भी

पक्ष की सामर्थ्य से अधिक सिद्ध न हो। यह सब हो जाने पर लड़की वाला लड़के वाले के सामने बारात लाने का प्रस्ताव रखता है।

किसी निश्चित शुभ दिवस को लड़का अपनी बारात के साथ लड़की वाले के घर आता है। अन्य भारतीय आर्य जातियों की तरह इन लोगों में 'भाँवर' अथवा 'फेरे' फिरने की रीति नहीं होती। अपितु लड़के तथा लड़की को साथ साथ काठ की दो चौकियों पर सजा कर बिठा दिया जाता है, और सभी सगे सम्बन्धी उनके चारों ओर बैठ जाते हैं। दूल्हा तथा दुलहन के आगे एक थाली में चावल, मिष्ठान्न, अण्डे तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं रीति अनुसार रख दी जाती हैं। इसके बाद दोनों का गठबन्धन कर दिया जाता है। यह सब कुछ हो जाने पर सभी उपस्थित जन धीरे धीरे कच्चे सूत के धागे उन के चारों ओर लपेटते जाते हैं। जिसका अर्थ यह होता है, कि अब यह दोनों अलग अलग नहीं रहे, अपितु एक सूत्र में बन्ध चुके हैं, जीवन-मरण का साथ हो चुका है। अब कोई भी शक्ति इन्हें पृथक नहीं कर सकती। दोनों जीवन सूत के इन कच्चे डोरों में बंध कर आज एक हो चुके हैं। इस रसम की समाप्ति पर सभी उपस्थित जनों को दुल्हा तथा दुल्हन प्रणाम करते हैं, और उनका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। फिर लड़की तथा लड़के के लिये भोजन लाया जाता है, जिसे वह एक दूसरे को खिलाते हैं, और यहाँ तक पहुँच कर विवाह समाप्त हो जाता है।

विवाह तो समाप्त हो जाता है, परन्तु अभी बारात विदा नहीं की जाती, शेष विदाई की रसम अगले दिन के लिये छोड़ दी जाती है। अगले दिन सभी उपस्थित महमानों तथा सगे सम्बन्धियों को एक प्रीति-भोज दिया जाता है। जब भोजन से छुट्टी पा ली जाती है, तो वर तथा वधू साथ-साथ हाथों में हाथ डाले आकर सभी महमानों के समक्ष नमस्कार करते हैं। फिर लड़की का बाप अपनी पुत्री तथा दामाद को कुछ आवश्यक गृहस्थ नीति समझा कर विदा कर देता है।

इसके विपरीत खोंग जाति के लोगों की विवाह-रीति इन 'चकमा' लोगों से कुछ थोड़ी सी भिन्न है। किन्तु इस जाति में भी लड़के के ही पिता

को दुल्हन की खोज करनी पड़ती है। जब कोई योग्य लड़की उसे पसन्द आ जाती है, तो वह उसके पिता के पास जा कर उसकी पुत्री का सुसर बनने का प्रस्ताव रखता है। यदि लड़की का पिता इसे स्वीकार कर ले, तो गांव के सभी प्रतिष्ठित जनों को एकत्रित कर के एक मुर्गा मंगाया जाता है। मुर्गा लाने का प्रबन्ध लड़की वाले पर होता है। जब मुर्गा आ जाता है, तो उसे मार कर उसकी जीभ निकाल ली जाती है। इस जीभ पर बने हुये प्राकृतिक चिन्हों द्वारा ही पण्डित जन विवाह के शुभ अथवा अशुभ होने का निर्णय करते हैं। यदि लक्षण शुभ विवाह की ओर संकेत करते हैं, तब तो लड़का अपनी बारात किसी अच्छे महूर्त में लेकर आ जाता है, अन्यथा विवाह सम्बन्ध लक्षण के प्रतिकूल होने पर तत्काल समाप्त कर दिया जाता है।

इन लोगों की बारात भी बड़े अजीब प्रकार की होती है। विशेष प्रिय-जनों को ही बारात में चलने का अधिकार होता है। ये सभी लोग विवाह वाले दिन, उल्टे सीधे बने हुये बेढंगे ढोल आदि पीटते हुये लड़की के घर आते हैं। इसके पश्चात बौद्ध धर्म का पण्डित जिसे अराकानी भाषा में ये लोग 'पुंगई' कहते है, आता है। यही धर्म-ग्रन्थी इन लोगों के विवाह आदि संस्कार रीति अनुसार कराया करता है।

लड़के को एक पवित्र स्थान पर खड़ा करके लड़की को बुला कर उस की बगल में खड़ा कर दिया जाता है। उस समय वर तथा वधू का मेक-अप देखने योग्य होता है। अनेक प्रकार के सुन्दर रंगीन वस्त्र उन्हें पहनाये जाते हैं। इसके बाद 'पुंगई' अपना मुट्ठियों में उबले हुये चावल लेकर दोनों हाथों को इस प्रकार एक दूसरे पर रखता है, जिस से गुणा की आकृति (×) सी बन जाती है। तथा उसी अवस्था में अपने हाथों से वह वर तथा वधू को उन चावलों का भोजन कराता है। इस प्रकार सात बार करने के पश्चात् वधू पर वर का सामाजिक तौर पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। यह है 'खोंग' जाति के लोगों की विवाह रीति।

अराकान के इन आदिवासियों की स्त्रियां प्राय: विवाह के सुअवसर पर भारत की अन्य जातियों की स्त्रियों की भांति ही नृत्य तथा गीत गाया करती हैं। भले ही यह गीत भाषा की अनभिज्ञता के कारण हमारी समझ में नहीं आते, और चाहे उन में संगीत कला की दृष्टि से कोई गुण नहीं, फिर भी उसमें छिपे हुये भाव उनकी उच्च काव्य-कल्पना के प्रतीक हैं। जिनसे उनके प्राचीन आदर्श, जीवन तथा उच्च-ज्ञान का अनुमान लगाया जा सकता है।

'चकमा' तथा 'खोंग' जाति के लोगों में वेश भूषा की दृष्टि से भी बड़ा भेद है। चकमा लोग तो फिर भी कुछ कुछ भारतीय वेष भूषा का अनुकरण किये हैं। परन्तु खोंग जाति के लोग तो बिल्कुल ही भिन्न प्रकार के हैं।

'खोंग' जाति के लोगों को दूर से देखने पर स्त्री तथा पुरुष में कोई भी भेद मालूम नहीं पड़ता। यह पहचानना ही कठिन हो जाता है, कि कौन स्त्री है, तथा कौन पुरुष, क्योंकि दोनों की वेश-भूषा एक समान ही होती है। 'चकमा' जाति की स्त्रियों की भांति खोंग स्त्रियां धोती अथवा साड़ी आदि का उपयोग नहीं करतीं, बल्कि केवल एक लुंगी ही बांधती हैं। इसके अतिरिक्त सिर के केश बढ़ाने का रिवाज पुरुषों में भी है। सिर के बाल कटवाना इस जाति में सामाजिक तौर पर निषिद्ध है। इसके बारे में इन का मत है, कि प्राचीन काल में अराकान देश पर एक बड़ा ही बलवान राजा शासन करता था तथा उसकी रानी इतनी रूपवती थी, कि राजा ने राज्य का सम्पूर्ण भार उसके प्रेम में डूब कर केवल उसी पर छोड़ दिया, और स्वयं हर समय उस की प्रेम लीला में खोया रहने लगा। किन्तु रानी ने अपनी चेतना का परित्याग नहीं किया, अपितु इस बुद्धिमानी से राज्य प्रबन्ध चलाया, कि प्रजा में सुख शान्ति का साम्राज्य छा गया। प्रजा अपनी महारानी को किसी दैवी शक्ति का अवतार समझने लगी। तभी एक दिन रानी को ऐसा अनुभव हुआ जैसे पुरुष लोग नारी जाति को अपनी मानव जाति से भिन्न मान कर उसे

समान दृष्टि से नहीं देखते। उसने तभी इस भेद को मिटाने के लिये प्रजा से प्रार्थना की। कि स्त्रियां अपनी महारानी की इच्छा अनुसार धोती या साड़ी का परित्याग कर अब लुंगी बांधा करें तथा पुरुष सिर के केश बढ़ायें तथा हाथ और पैरों पर गुदने गुदवाया करें।

अपनी देवी समान महारानी के आदेश को प्रजा टाल नहीं पाई, तथा उसे देवादेश समझ कर उसका अनुकरण कर उठी। तभी से सब 'खोंग' जाति के पुरुष हाथ पैरों पर गुदने गुदवाते हैं, तथा सिर के केश बढ़ाते हैं। दूसरी ओर स्त्रियों में भी साड़ी के स्थान पर वही लुंगी बांधने का रिवाज चला आ रहा है। स्त्रियों में चोटी करने का रिवाज नहीं है, बल्कि सभी स्त्री पुरुष अपनी अपनी केश राशियों को संवार कर पीछे की ओर गांठ के रूप में बांध लेते हैं।

अराकान के यह लोग 'बिस्तु' नामी त्योहार बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। यही इन का सब से मुख्य त्योहार है। वसन्त के सुअवसर पर यह लोग गौतम बुद्ध, लक्ष्मी तथा दुर्गा आदि देव पुरुषों तथा देवियों की पूजा बड़ी श्रद्धा से करते हैं। तथा ऐसे अवसर पर स्त्री पुरुष सभी इकट्ठे मिल कर नृत्य भी करते हैं, तथा खूब गाते बजाते हैं।

इन लोगों में एक अनोखी प्रथा और भी प्रचलित है, कि जब इन के गांव के किसी सरदार आदि की मृत्यु होती है। तो उसे सजा कर बड़ी धूम-धाम से एक रथ में रख कर श्मशान की ओर ले जाते हैं, वहां पहुंच कर रथ के दोनों ओर मोटे मोटे रस्से बांध दिये जाते हैं, जिसमें एक ओर स्वर्ग तथा दूसरी ओर नर्क निश्चित कर दिया जाता है, फिर सभी एकत्रित जनों को बराबर २ बांट कर रस्सों को खींचा जाता है। यदि स्वर्ग के पक्ष वाले व्यक्ति जीत जाते हैं, तो यह समझा जाता है, कि सरदार अपने शुभ कर्मों के अनुसार स्वर्ग को गया है, अन्यथा नरक पक्ष के जीतने पर उसका वास नर्क में ही समझा जाता है। यह सब कुछ करने के पश्चात ही रीति अनुसार उसका अन्तिम संस्कार किया जाता है।

अराकान देश में भारत के अन्य प्रदेशों की भांति मकान एक दूसरे के निकट नहीं होते, अपितु बड़ी दूर दूर स्थित होते हैं। बात वास्तव में यह है, कि सभी लोग अपने घर अपने खेतों के मध्य में ही बनाते हैं। इकट्ठे मकान बनाने का वहां रिवाज नहीं है।

अराकानी लोगों को फूलों से बड़ा प्यार होता है। बालों तथा वस्त्रों में फूल लगाये रहने का इन्हें बड़ा चाव होता है। सुबह सवेरे ही युवक वन को जाते हैं, तथा वहां से सुन्दर पुष्प तोड़ कर लाते हैं। और अपनी पत्नियों के बालों में लगाते हैं। गृहस्थ जीवन में इन दम्पत्तियों के बीच पुष्प का जितना महत्व होता है, उतना किसी अन्य वस्तु का नहीं। यह लोग कहीं भी हों, काम पर अथवा आराम पर, हर समय इन के वस्त्रों अथवा केशों में सुगन्धित पुष्प सजे रहते हैं। यहां कोई भी शुभ कार्य बिना पुष्पों के पूर्ण नहीं समझा जाता।

हमारे गांवों की चौपालों की तरह वहां विशेष पंचायतों के लिये चौपालें नहीं होतीं, अपितु एक खोंग-गृह होता है। यह खोंग-गृह गांव के निकट ही किसी रमणीक तथा शांत वातावरण में बनाया जाता है। बांस की फट्टियों से बनाया गया यह छोटा सा भवन बड़ा साधारण होता है। यही इन लोगों का धर्म स्थान अथवा मन्दिर होता है, जहां गांव के सभी लोग पूजा पाठ आदि करते हैं। भगवान बुद्ध की मूर्ति भी इसके बीच सजी होती है। यह मूर्तियां अधिकतर लकड़ी की बनी होती हैं।

प्रत्येक खोंग-गृह का एक पुजारी भी होता है। इस का काम मन्दिर की देख भाल तथा पूजा पाठ आदि करना है। इसके अतिरिक्त इन अराकानियों के विवाह आदि संस्कार भी यह पुजारी ही करता है। केवल इतना ही कार्य इस पुजारी का नहीं होता, अपितु गांव के बच्चों की शिक्षा दीक्षा आदि कार्य भी इसी के जिम्मे होते हैं। इस की वेश-भूषा भी बड़ी सरल होती है। पीत वर्ण के वस्त्रों में ये पुरातन काल के धर्माचार्य की भांति प्रतीत होता है। इस पुजारी को अपने खर्च के लिये कहीं मांगने नहीं जाना पड़ता, बल्कि

जिस चीज़ की भी उसे आवश्यकता होती है, वह गांव के लोग ही उसके लिये उपलब्ध करा देते हैं। खाना-दाना भी उसका ग्राम-वासियों के ही सिर होता है। जब कोई महमान आदि गांव में आता है, तो उसका खाना आदि भी गांव की लड़कियां ही उसके लिये मन्दिर पर पहुँचा देती हैं, क्योंकि उसका रहने का प्रबन्ध इन्हीं मन्दिरों पर किया जाता है।

अपने महमानों की टहल सेवा में ये लोग इतने उच्च आदर्श के तो हैं नहीं, जो उसके लिये अपना सभी कुछ भुलादें, परन्तु फिर भी उससे पर्याप्त स्नेह रखते हैं। यदि ये शिक्षित हो जायें, तो हो सकता है, कि अपनी जंगली बातें त्याग कर यह लोग भारत के सभ्य नागरिक बन जायें।

————

कुलाडन प्रदेश के निवासी

यह संसार कैसा विचित्र है इस में अनेक प्रकार के मनुष्य तथा भांति भांति की जातियां देखने को मिलती है। कैसे २ उनके रंग, कैसे कैसे वेश तथा प्रकार दिखाई देंगे यहां तक कि प्रत्येक गांव की भाषा, रहन-सहन, तथा खान-पान में भी थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य पाया जाता है। जाने कितनी प्रकार के उनके समाज हैं और समाजों के रीति रिवाजों में भी प्रायः भिन्नता पाई जाती है। यह सब कैसे तथा क्यों है? इसका कारण उस स्थान की स्थिति तथा जलवायु है। इन्हीं के आधार पर मनुष्य का विकास होता है। इन्हीं के आधार पर उसको अपना जीवन किसी विशेष रूप में ढालना पड़ता है। अब हम आप को एक अत्यन्त विचित्र मानव जाति के बारे में कुछ बताना चाहते हैं, आप में से बहुत कम लोगों ने इस जाति के बारे में सुना होगा परन्तु जो लोग उनके प्रदेश के आस पास रहते हैं, उन्हें उनके प्रति कुछ जानकारी प्राप्त है। ये लोग हैं कुलाडन प्रदेश के निवासी।

इस से पूर्व कि इन लोगों के जीवन पर कुछ प्रकाश डाला जाये, हमारे लिये उनके देश की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। कुलाडन वास्तव में अराकान पर्वत मालाओं के आंचल में बहने वाली एक बड़ी प्रसिद्ध नदी है। ये लोग उसी के आस पास के क्षेत्र में काफ़ी दूर तक आबाद हैं। वैसे तो यह नदी बरसाती है, और पहाड़ी क्षेत्र में ही बहने वाली है, परन्तु फिर भी थोडा बहुत पानी इसकी गोद में प्रायः बहा करता है। यहां पर बसने वाली जिस आदिम जाति के बारे में हम बताने जा रहे हैं, वे लोग इस नदी को बड़ा पवित्र मानते हैं तथा इसमें अपनी बड़ी श्रद्धा रखते हैं।

इस जाति के लोगों को 'कुमी' कहा जाता है। 'कुमी' वास्तव में अराकानी भाषा का शब्द है, जिसका मतलब है 'कुत्ता नर'। इन लोगों का

यह नाम क्यों है, इसका भी एक विशेष इतिहास है। जिसके बारे में हम आगे बतायेंगे। यहां तो इतना जान लीजिये कि ये लोग वैसे तो कुत्ते को एक पवित्र पशु मानते हैं, परन्तु उसका मांस खाने में भी संकोच नहीं करते। इन्हें जितना स्वादिष्ट कुत्ते का मांस लगता है, उतना अन्य किसी भी पशु का नहीं लगता। वैसे ये लोग प्रायः मांसाहारी हैं, इसलिये अनेक जानवरों तथा पक्षियों का मांस खाते हैं।

यदि आप इनके आकार को देखो तो भयभीत हो उठो। अन्य पहाड़ी प्रदेशों में बसने वाली जातियों की तरह इनका छोटा कद नहीं होता, बल्कि ये लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट तथा भयानक आकृति के होते हैं। ये लोग शरीर पर ऐसे अलंकार धारण करते हैं, कि उन्हें देख कर हृदय से भय का संचार होने लगता है।

ये लोग शरीर पर कोई विशेष वस्त्र धारण नहीं करते बल्कि एक साधारण सा कपड़ा कमर के गिर्द लपेट कर ऊपर से फेंटा बांध लेते हैं। इन की स्त्रियों को देखिये, तो वे भी बिल्कुल नग्न-शरीर ही दिखाई देंगी। एक लुंगी सी तो कमर के चारों ओर अवश्य लपेटती हैं, इस के अतिरिक्त शरीर के और किसी भी भाग को नहीं ढांपतीं। अधिक वस्त्र धारण करने में इन्हें आलस्य प्रतीत होता है। ये नारियां शरीर की इतनी कठोर होती हैं, कि भारी से भारी बोझ उठाने में भी नहीं हिचकिचातीं, बल्कि उसे अनायास उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती हैं। इतना ही नहीं बल्कि खेतों का सारा काम भी इन्हीं पर निर्भर रहता है। पुरुष खेती के कार्य में अधिक समय नहीं दे पाते, क्योंकि उनके लिये और भी अनेक कार्य करने को होते हैं।

वास्तव में यदि इन कुमी लोगों के जीवन का भली प्रकार अध्ययन किया जाय तो आप को यह विदित होगा, कि शायद इस से बड़ी लड़ाकू जाति संसार में कोई कम ही होगी। इन का जीवन क्या है? सचमुच हर समय मृत्यु से खिलवाड़ करना है। इस प्रदेश में आप को बहुत से गांव तो ऐसे मिलेंगे, जहां दिन रात अपनी रक्षा के लिये लोग हथियारों से सज कर पहरा दिया करते हैं। पहरा देने का यह कार्य प्रत्येक गांव में नहीं होता, अपितु इन

लोगों की प्रकृति इतनी झगड़ालू है, कि तनिक सी बात भी सह नहीं पाते, और इस तरह जरा २ सी बात पर ही एक गांव की दूसरे गांव के लोगों से इस तरह ठन जाती है, कि जब तक एक दूसरे को परास्त न कर लें तबतक चैन नहीं लेते। हर समय यही भय रहता है, कि दिन या रात्रि को न जाने किस समय अचानक एक गांव के लोग दूसरे गांव के लोगों पर आक्रमण कर बैठें, इस लिये ऐसी अवस्था में गांव की रक्षा के उद्देश्य से २० या २५ आदमियों की टोली हर समय पहरे पर नियत रहती है, और यह पहरा तब तक चलता है, जब तक कि हार जीत का निर्णय न हो जाये।

हार या जीत का निर्णय अथवा झगडे का अन्त वार्तालाप द्वारा नहीं होता। एक की शक्ति दूसरे की शक्ति से कितनी भी कम क्यों न हो, फिर भी रक्त बहा कर ही हार, जीत का निर्णय किया जाता है।

ये लोग इतने अधिक युद्ध-प्रिय हैं, कि इन की नस नस में गर्म रक्त प्रवाहित होता रहता है। इन के गांव या घरों को ही देखिये, तो वह भी एक प्रकार से गढ़ से मालूम पड़ते हैं। इन लोगों के गांव आपको कभी किसी पहाड़ी के आंचल में नहीं दीख पड़ेंगे, बल्कि ये लोग उन्हें सदा पहाड़ी की चोटियों पर किसी ऐसे स्थान पर बनाते हैं, जहां से चारों ओर के क्षेत्रों पर नजर रखी जा सके। इस दृष्टि से इन लोगों के युद्धकौशल में अत्यन्त निपुण होने का पता चलता है।

ये लोग अपने घर मिट्टी, ईंट या पत्थर के नहीं बनाते, बल्कि लकड़ी के ही बनाते हैं, वैसे तो इन मकानों के निर्माण में हर प्रकार की मजबूत लकड़ी का प्रयोग होता है परन्तु ये लोग बांस को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इसके भी दो कारण हैं पहला तो यह कि यदि ये लोग बांस के अतिरि किसी अन्य लकड़ी का प्रयोग करें, तो व्यय अधिक होता है, परन्तु ये इतने ग़रीब होते हैं, कि इन में खर्चा सहन करने की शक्ति नहीं होती। दूसरा कारण यह है, कि बांस इन क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार काफ़ी मिल जाता है, तथा उसके मकान भी काफी हल्के-फुल्के रहते हैं, और अपनी आवश्यकता के अनुसार उन्हें छोटा बड़ा भी किया जा सकता है।

कुमी लोग अपने मकान गांव के आंगन के चारों ओर मिला कर बनाते हैं कि सिवाय मुख्य द्वार के, जो कि विशेष तौर पर बड़ा मजबूत बनाया जाता है, अन्य कोई भी मार्ग बाहर निकलने के लिये नहीं होता। यह द्वार मजबूत लकड़ी के मोटे मोटे लठ्ठों को जोड़ कर बनाया जाता है। गांव के चारों ओर इसी प्रकार के लठ्ठों को जोड़कर एक दीवार भी बनाई जाती है, जो कि गांव की रक्षा के लिये काफ़ी उपयोगी सिद्ध होती है। प्रत्येक गांव में एक ऐसा सभा भवन भी होता है, जहां बैठ कर कुमी लोग समय समय पर आवश्यकतानुसार अपनी समस्याओं पर दृष्टिपात करते हैं।

इसके अतिरिक्त ये लोग ऊंचे २ वृक्षों पर भी कुछ ऐसे छोटे २ मकान बनाते हैं, जिन में प्रवेश के लिये छोटे २ द्वार होते हैं, जिन पर किवाड़ भी लगे होते हैं। यह मकान अन्य मकानों की अपेक्षा कहीं अधिक मजबूत तथा अंधकार पूर्ण होते हैं। इन मकानों में चारों ओर छोटे २ छिद्र रखे जाते हैं, जिनका युद्ध के समय बड़ा महत्त्व होता है। इन छिद्रों से ये लोग अपने शत्रु पर दृष्टि रखने, तथा उन पर चोट करने का प्रबन्ध करते हैं। वृक्षों पर इतने ऊंचे मकान बनाने का अभिप्राय भी यही होता है, कि शत्रु के जोरदार आक्रमण को रोका जा सके। जब भी इन लोगों को किसी दूसरे गांव के लोगों की ओर से आक्रमण होने का सन्देह होता है, तो ऐसी स्थिति में ये लोग अपने हथियारों से सुसज्जित हो कर अपने २ मोर्चों पर डट जाते हैं, तथा कुछ विशेष योद्धाओं को शत्रु का आक्रमण विफल बनाने के लिये इन मकानों पर नियुक्त कर दिया जाता है, और ऐसा देखा गया है, कि इस प्रकार ये लोग अपने उद्देश्य में काफी कुछ सफल भी हो जाते हैं। वृक्षों पर बहुत से मकान तो इतने अधिक ऊंचे बनाये जाते हैं, कि इनकी ऊंचाई सौ फ़ुट तक पहुंच जाती है इन मकानों पर चढ़ने के लिये सीढ़ियों का उपयोग किया जाता है। युद्ध के समय यह सीढ़ियां ऊपर खींच ली जाती हैं, ताकि शत्रु को इन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने का अवसर प्राप्त न होने पाये।

प्राचीन शस्त्रों के साथ साथ यह लोग आधुनिक हथियारों का प्रयोग भी करते हैं, आधुनिक हथियारों में बन्दूक का इनके लिये बड़ा महत्त्व है। इतने भयानक हथियार रखने के लिये यह कोई लाइसेंस आदि नहीं बनाते, बल्कि लाइसेंस रहित हो कर ही उनका उपयोग उठाते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि ये लोग पूर्ण निरक्षर होते हैं, और लाइसेंस आदि बनवाने में इन्हें बड़ा झंझट प्रतीत होता है तथा गरीबी के कारण हर एक व्यक्ति लाइसेंस की फ़ीस भी नहीं दे पाता, किन्तु इनका जीवन इतना कठोर तथा भयानक होता है कि बिना शस्त्र के ये लोग जीवित नहीं रह सकते। हर समय मौत का सामना करना पड़ता है इस लिये अपनी सुरक्षा के लिये इन्हें उसे हर हालत में रखना ही पड़ता है। दूसरा कारण यह है, कि यह लोग नगरों से दूर भयानक वनों में रहते हैं, जहां साधारण मनुष्य तो पहुँच भी नहीं पाता, इसलिये सरकारी कर्मचारियों की नजर से बचे रहते हैं। वैसे सरकार ने अब इनके शस्त्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, तथा इनके लिये शस्त्र रखने पर लाइसेंस प्राप्त करना अनिवार्य घोषित कर दिया है। यह लाइसेंस इन्हें बिना किसी बाधा के प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु फिर भी आधे से अधिक कुमी लोग ऐसे हैं, जो अब भी सरकारी कर्मचारियों की नजरों से छुपा कर बिना लाइसेंस के शस्त्र रखते हैं। यह केवल अविद्या का ही प्रभाव है, शिक्षित समाज अभी तक इनके नेत्रों ने कभी देखा ही नहीं। आज का सभ्य जगत इनकी स्थिति से कोसों दूर है। अभी ये लोग उसके गुणों से परिचित नहीं हो पाये। किन्तु आज हमारी सरकार ने इनके जीवन को सुधारने का निश्चय किया है और शिक्षा ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा इनके अंधकार-पूर्ण जीवन में सभ्यता की ज्योति जलाई जा सकती है। यदि इन लोगों को शिक्षित किया जाये, तो ये लोग जंगली स्वाभाव को त्याग कर अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने में सफल हो सकते हैं। इसी विचार से सरकार इनमें शिक्षा का प्रचार करने के लिये प्रयत्न कर रही है। यह ठीक है, कि अभी इन लोगों ने इस विषय में विशेष रुचि का प्रदर्शन नहीं किया, इसलिये कम ही सफलता प्राप्त हो पाई है, परन्तु इतना

निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है, कि इस मामले में जितना अधिक श्रम सरकार को करना पड़ रहा है, वह किसी न किसी दिन फल अवश्य ही देगा।

कितना पिछड़ा हुआ और मौत से घिरा हुआ जीवन है इन 'कुमी' लोगों का। यह सब क्यों है? क्यों यह लोग इतनी अधिक भयानक तथा युद्ध-प्रिय प्रकृति के हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है। यदि हम लोग इनके सामाजिक जीवन पर दृष्टि पात करें, तो हमें पता चलता है, कि यह लोग हमारी तरह अपने पूर्वजों का कभी आदर नहीं करते। आदर न करने का यह मतलब नहीं, कि यह लोग उनकी आज्ञाओं का पालन नहीं करते, या उनका अपमान किया करते हैं अपितु ऐसी कोई रीति इन में प्रचलित नहीं है। इसी कारण यह लोग ऐसा नहीं करते, अन्यथा ये लोग तो उनके लिये अपना रक्त तक बहा देते हैं। उनकी सुरक्षा के लिये ये लोग अपनी मौत से भी लड़ते हैं। फिर आदर न करने का आशय क्या है?

स्वभाव से ही ये लोग अत्यन्त घमण्डी होते हैं और इसी घमण्ड का यह प्रभाव है, कि ये लोग संसार के सब से पूज्य महापुरुष के आगे भी सिर नहीं झुकाते। झुक कर चलना यह नहीं जानते। इन की माताएँ बचपन से ही इन्हें ऐसी शिक्षा देती हैं, जिसके प्रभाव से इनका स्वभाव अत्यन्त स्वाभिमानी हो जाता है, और फिर क्या मजाल, कि यह लोग किसी के समाने झुकें। कोई भी हो, चाहे वह इनका पिता भी क्यों न हो, यह उसके सामने भी नहीं झुकते। इन्हें बाल-पन में ही जैसी शिक्षा दी जाती है, वह इस बात से स्पष्ट हो जाती है, कि जब कोई बालक पैदा होता है, तो रीति-अनुसार उसका नाम रखा जाता है। इसके बाद माता कच्चे सूत के धागे के साथ बालक के हाथ बांधती है, फिर उसे आशीर्वाद देती है, कि "हे प्रिय पुत्र! तुम एक बहादुर योद्धा बनो, हर जगह तुम्हारे बाहु-बल की कीर्ति बढ़े, प्रत्येक दिशा में तुम्हारी जीत हो, तथा तुम किसी के आगे न झुको।" माता ही नहीं, अपितु

जीवन के अनेक अवसरों पर आशीर्वाद के समय, इनके पूर्वज भी इन्हें ऐसे ही आशीर्वाद दिया करते हैं।

पूर्ण-अशिक्षित होने के कारण ये लोग उसकी वास्तविकता को नहीं समझ पाते, और बाला-पन से ही इन्हें अपना लहू इतना तुच्छ दिखाई देने लगता है, कि हर समय शीश पर कफ़न बांधे लड़ने मरने को तैयार दिखाई देते हैं। किसी भी अन्य व्यक्ति की बात सहन कर पाना इन्होंने नहीं सीखा इसलिये या तो स्वयं कट मरते हैं, और या उपेक्षा करने वाले को मृत्यु के घाट उतार देते हैं। जहाँ किसी ने इनके प्रति विरोध की तनिक भी भावना प्रदर्शित की, तो चाहे वह सत्य ही क्यों न हो, परन्तु ये लोग उसे किसी प्रकार सहन कर लें, ऐसा देखने में नहीं आता। तुरन्त भयंकर संग्राम छिड़ जाता है, और तब तक उसकी समाप्ति नहीं हो पाती, जब तक कि एक ओर के दल का पूर्ण रूप से नाश न हो जाये। इन लोगों में मनुष्य का मूल्य बहुत सस्ता है, अविद्या के कारण ये लोग इतने भयानक कार्य करने में कोई संकोच नहीं करते।

परन्तु जहाँ ये लोग इतने अधिक जंगली तथा भयानक हैं, वहाँ इन में कुछ विशेष गुण ऐसे हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका अतीत भी कभी गौरवमय रहा होगा।

अपने प्रति इन लोगों ने एक लोक-कथा भी घड़ रखी है, जिस में यह लोग अपनी जाति की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। इनका विश्वास है, कि सब से पहले इस सौर मण्डल में ईश्वर था, तथा उसी ने चन्द्र, सूर्य आदि बनाये, तथा सब से अन्त में पृथ्वी बनाई। जब पृथ्वी बन कर तैयार हो गई, तो विधाता ने खड़िया मिट्टी की दो मूर्तियां बनाईं। जब ईश्वर इन मूर्तियों को बना चुका, तो थक जाने के कारण उसे नींद आ गई। इतने में एक बड़ा भयानक सर्प आया, और ईश्वर को सोते देख अवसर पा कर उन्हें निगल कर लोप हो गया। जब ईश्वर की निद्रा टूटी, तो मूर्तियों को न पा कर उन्हें बड़ा कष्ट हुआ, परन्तु जब उनकी समझ में उनके खोये जाने का कोई कारण न आया, तब विवश हो कर उन्होंने और दो दूसरी प्रकार की मूर्तियां बनाईं।

परन्तु जैसे ही भगवान इन मूर्तियों को बना कर पूर्ण कर पाया, वैसे ही उसे फिर नींद आ गई। इस बार भी वही सर्प न जाने कहाँ से आया, और फिर इन मूर्तियों को निगल गया। इस बार भी आँख खुलने पर जब भगवान को उसकी मूर्तियाँ न मिलीं, तो वह बड़ा दुखी हुआ। इन मूर्तियों को बनाने में भगवान को पूरा एक दिन लगाना पड़ता था। जाने कितने श्रम के पश्चात वह पूर्ण हो पाती थीं, फिर भी निद्रा की अवस्था में उनकी सुरक्षा न हो पाती और उन को खो देना पड़ता। ऐसा भगवान ने अनेक बार किया, परन्तु हर बार निराशा ही प्राप्त हुई, और उनकी रक्षा किसी प्रकार भी नहीं की जा सकी।

अन्त में एक दिन भगवान ने यह निर्णय कर लिया कि इन मूर्तियों की सुरक्षा अनिवार्य है, इसलिये किसी ऐसे प्रहरी की आवश्यकता है, जो जब भी कोई भय हो, मुझे जगा दिया करे। यही एक ऐसा उपाय था जिस से उन मूर्तियों की रक्षा की जा सकती थी। अन्त में एक दिन भगवान ने सोचा, कि मनुष्य की मूर्ति बनाने से पूर्व किसी ऐसे जानवर की सृष्टि की जाये, जो बहुत आज्ञाकारी हो। इस लिये भगवान ने सब से पहले एक जानवर बनाया, जिसे कुत्ता कहते हैं। अब फिर भगवान ने मनुष्य की दो मूर्तियां बनाईं, जिनमें एक पुरुष तथा दूसरी स्त्री थी। इस बार जब वह सोया, तब वही सर्प फिर कहीं से निकल कर मूर्तियों को निगलने के लिये आया किन्तु कुत्ता पहरे पर था, इसलिये उसने सर्प को देख कर बड़े जोर जोर से भौंकना प्रारम्भ कर दिया। ज्यों ही कुत्ता भौंका, वैसे ही भगवान की निद्रा भंग हो गई और वह जाग उठा। यह देख सर्प भयभीत हो कर भाग गया, और इतना भयभीत हुआ, कि फिर कभी लौट कर नहीं आया। इन मूर्तियों में ही प्राण डाल कर भगवान ने इन्हें मनुष्य रूप दिया, जिन के द्वारा हम सब लोगों की उत्पत्ति हुई है।

कितनी अनोखी तथा रोचक है इन लोगों की सृष्टि की कहानी, जो प्राय: इन के मुख से सुनने को मिलती है! हो सकता है कि यह पूर्ण मन

घड़न्त हो, परन्तु इस में गम्भीर विचारों का समावेश है। यह कथा अन्य सभ्य जातियों की लोक-कथाओं से किसी प्रकार भी कम महत्व नहीं रखती।

आज के महान विद्वानों ने जिस प्रकार मनुष्य को पशुओं की संतति माना है, तथा मनुष्य से पहले जानवरों की उत्पत्ति ठीक मानी है, उसी प्रकार इन्होंने भी मनुष्य को पशुओं की संतति तो स्वीकार नही किया, परन्तु उस से पूर्व पशुओं की उत्पत्ति अवश्य मानी है, जिसके स्पष्ट दर्शन इनकी उपयुक्त सृष्टि सम्बन्धित लोक कथा में प्राप्त होते हैं। यह लोक कथा इनके प्राचीन गौरव का एक ऐसा दृढ़ स्रोत है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ल्यांग प्रदेश के निवासी

हमारी धरती पर जितनी मानव जातियों का वास है, उसका कोई हिसाब नहीं, कोई ठिकाना नहीं। परिस्थितियों ने इन्हें अनेक बार बरबाद किया है, इन्हें बे घर बार किया है। इन्हें एक स्थान से ले जा कर दूसरे स्थान पर पटका है। इतना होते हुए भी मानव ने कभी हार नहीं मानी, और सदा ही बड़ी से बड़ी विपत्ति का सामना किया है, उन से टक्कर ली है। प्रत्येक दिशा में, अपना सब कुछ खो कर भी अपने अस्तित्व को मिटने नहीं दिया। समय ने तो उसे मिटाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, परन्तु इसे मिटाने में वह सफल नहीं हुआ। वैसे तो, सभी विपत्तियों को झेलते हुए मानव ने परिस्थितियों के हर प्रहार को सहन करते हुए अपनी रक्षा की है, परन्तु इससे मानव जाति को एक बहुत बड़ा धक्का लगा है, कि उसने एक से अनेक का रूप धारण कर लिया। जैसे यदि मिट्टी का एक पात्र हाथ से छूट जाये, तो पृथ्वी पर गिर कर वह खण्ड खण्ड हो जाता है, बिल्कुल उसी तरह मानव भी एकता से जब छूटा तो वह टुकड़े टुकड़े हो गया। अब प्रश्न उठता है, कि ऐसा क्यों हुआ ? निस्सन्देह यह परिस्थितियां ही थीं जिन का यह परिणाम है। परिस्थितियों से यहां हमारा आशय केवल उस वातावरण से है जो मनुष्य के चारों ओर विचरता है। इसके साथ साथ यह एक प्रकार से प्राकृतिक प्रहार भी हो सकते हैं। यही दो चीजें ऐसी हैं, जो जब अपना प्रचण्ड रूप धारण कर मानव के कोमल जीवन पर अपना आक्रमण करती हैं, तो इन की चोटों को न सह कर वह टुकड़े टुकड़े होने को विवश हो जाता है। यह सब कुछ उसके अपने बस की बात नहीं कि वह इन्हें रोक सके, या उनकी उपेक्षा कर सके।

आज 'ल्यांग' लोगों के प्रति कुछ लिखते हुये भी हमें यही सोचना पड़ता है, कि यदि ये लोग आज इतने अधिक पिछड़े हुये हैं, तो क्यों ? इस

से पूर्व कि इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा की जाये, इन लोगों के देश पर भी थोड़ी सी नजर डाल लेनी चाहिये, क्योंकि इसका भी इनके जीवन पर एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है।

ह्यांग लोगों के देश को यहाँ हम ह्यांग प्रदेश के नाम से ही याद करेंगे क्योंकि अन्य आदिम जातियों की अपेक्षा एक नवीन भिन्नता इन लोगों में देखने को मिलती है। इसे तब तक ठीक रूप से नहीं बताया जा सकता, जब तक कि इनके देश को कोई नियत रूप नहीं दे दिया जाता। आसाम में स्थित अराकानी पर्वतों में बहने वाली कून्लाडन नदी के निकट ही इस जाति का वास है। वहाँ पर घने वन हैं, जिनमें से होकर गुजरना मनुष्य के बस का कार्य नहीं। परन्तु आपको आश्चर्य होगा, कि इन्हीं भयानक जंगलों में यह लोग रहते हैं। इन वनों में प्रत्येक घड़ी भयानक हिंसक पशुओं का डर बना रहता है, कि न जाने कब प्राणों का संकट उपस्थित हो जाये। यहाँ रहने वाले, 'ह्यांग' लोगों के लिये, तो जैसे यह कोई बात नहीं। वर्षों तक कष्ट झेलते झेलते शायद ये लोग इतने अभ्यस्त हो गये है, कि अब इन्हें ये दुःख तुच्छ से प्रतीत होने लगे हैं। जंगली जानवरों के निरन्तर आक्रमणों ने इन्हें इस योग्य बना दिया है, कि ये उनका सामना बड़ी दृढ़ता से कर सकते हैं। इसी लिये अब इन्हें इन बातों से कोई भय नहीं रहा। भयानक से भयानक जंगली जानवर भी अब इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। ये लोग स्वतन्त्रता पूर्वक इन भयानक वनों में विचरण करते हैं, पर इन्हें किसी प्रकार का कोई डर नहीं लगता। परिस्थितियों ने इन्हें इतना महान शिकारी बना दिया है, कि जंगली जानवर भी इन्हें देख कर स्वयं भयभीत हो उठते हैं, और अपने प्राणों की रक्षा के लिये उन्हें भागना ही पड़ता है।

ये लोग मकान बना कर नहीं रहते। आज भी ये लोग आदि मानव की भांति गुफायें बना कर रहते हैं। ये गुफायें भीतर से बड़ी अंधेरी होती हैं परन्तु इनमें इन्हें किसी प्रकार के डर का आभास नहीं होता। इन्हीं में छिप कर ये लोग प्राकृतिक प्रहारों तथा वन के भयानक पशुओं से अपनी रक्षा करते हैं।

इन लोगों का विश्वास है, कि भगवान एक नहीं, अपितु उसके दो रूप हैं, जिनमें से एक को तो यह लोग 'खोजिग' के नाम से पुकारते हैं, तथा उसके रहने का स्थान दूर अराकान पर्वत की ऊँची चोटियों की ओर बताते हैं। इन लोगों का विचार है, कि यह छोटा भगवान है, जो केवल हमारी सुरक्षा करता है। जब इन लोगों पर कोई आपत्ति आती है, या कोई भयानक रोग इन लोगों में फैलता है, तो ये लोग उसी की शरण में जाते हैं, उसी का ध्यान करते है, तथा अपनी सुरक्षा के लिये उस से प्रार्थना करते है। यदि फिर भी यह प्राकृतिक प्रकोप इनका पिण्ड न छोड़े तो ये लोग समझते है, कि अब भगवान खोजिग हम से रुष्ट हैं, तभी तो इतना अत्याचार हो रहा है, जिस से ग्रस्त हो कर मानव तड़प तड़प कर मर रहा है। निसन्देह हम पापी है, हम ने पाप किये हैं, जिन से दुखी हो कर छोटा भगवान हम से घृणा करने लगा है, और तभी वह हमारी नहीं सुनता, और ऐसी अवस्था में यह लोग उसके नाम पर बन्दर आदि जंगली पशुओं की बलि चढ़ाते हैं, ताकि 'खोजिग' इन से प्रसन्न हो कर इनकी रक्षा कर सके। इन का विश्वास है, कि यदि बलि श्रद्धा पूर्वक चढ़ाई जाये, तो भगवान अवश्य ही प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि उसी ने तो हमें पैदा किया है, हम उसके प्रिय पुत्र हैं। यदि हम से कोई अपराध हो जाता है तो वह हमें अवश्य ही क्षमा कर देता है, क्योंकि हम उसके बच्चे जो हैं।

सिंह को यह लोग खोजिग भगवान के घर का पहरेदार समझते हैं तथा उसे उसका एक वफ़ादार पालतू जानवर मानते हैं। इन लोगों का कहना है, कि सिंह इसी लिये हम पर आक्रमण नहीं करता कि वह हमारे श्रेष्ट पिता खोजिग का नोकर है, और हम लोगों को वह अपने स्वामी के पुत्र समझता है। यदि ऐसा न होता, तो वह हम लोगों को बिना खाये नहीं छोड़ता, और इस दुनियां से हमारा नाश हो जाता। परन्तु चूँकि हम उसके स्वामी के पुत्र हैं, इसी लिये वह हम से डरता है, और हम पर कोई प्रहार नहीं करता। यदि वह हमें खाने का प्रयास करे, तो श्रेष्ठ-पिता खोजिग उसे अपनी नोकरी से ही न निकाल दे, अपितु उसके वंश का भी नाश कर दे। संसार में कौन ऐसा

पिता है, जिसे अपने बच्चों का दर्द न हो। भगवान सोंजिग को भी हमारा बड़ा दर्द है, उसे हर घड़ी हमारा ध्यान रहता है, फिर क्या मजाल कि यह भयानक पशु उसके होते हुये हमारा कुछ बिगाड़ सके।

अपने दूसरे भगवान का नाम इन्होंने 'पेंती' रख रखा है। इन का विचार है, कि दूर पश्चिम में कहीं उसका बड़ा ही मनोहर महल है, तथा वह उसी में रहता है। जिस देश में 'पेंती' पिता रहता है, वहाँ किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। वह स्थान स्वर्ग के समान सुख और वैभव से परिपूर्ण है। अपने उस देश और महल में भगवान 'पेंती' बिल्कुल अकेला रहता है। हम साधारण प्राणी वहाँ तक नहीं पहुँच सकते। यह पेंती ही हमारा बड़ा भगवान है, जिसने यह सारी दुनियाँ, करोड़ों सितारे, आकाश, जल, धरती तथा अनेक जीव बनाये हैं। वह चाहे तो एक पलक की झाकी में ही इन सभी चीज़ों को नष्ट और जीवित कर सकता है। सूर्य को यह लोग 'पेंती' भगवान का विशेष सचिव मानते हैं, जो दिन भर संसार में होने वाले प्रत्येक कार्य पर कड़ी नज़र रखता है। कोई भी जीव उससे अपना हाल नहीं छिपा सकता। उसके पास प्रत्येक जीव के जीवन का हिसाब किताब रहता है, जिसे वह प्रतिदिन संध्या समय भगवान 'पेंती' को दिखाता है। इस प्रकार उसे अपने बनाये हुये जगत में होने वाली प्रत्येक बात का पता चल जाता है, कि यहाँ क्या कुछ हो रहा है। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात इसी हिसाब किताब के आधार पर उसके लिये श्रेष्ठ पद अथवा दण्ड विधान की व्यवस्था होती है। जब सूर्य सारा दिन हिसाब किताब बनाने तथा उसे भगवान 'पेंती' को दिखाने के पश्चात थक जाता है, तो वह वहीं पश्चिम में भगवान के बग़ीचे में विश्राम करता है। सारा दिन कार्य करने के बाद वह इतना ज्यादा थक जाता है, कि उसे नींद आ जाती है, इसी लिये रात हो जाती है। भगवान 'पेंती' तथा उसके सभी नौकर अपना सारा कार्य नियमित रूप से करते हैं। उनके सोने और जागने का समय भी नियत होता है, इस लिये वह प्रतिदिन नियमित रूप से सोते और जागते, अर्थात निकलते हैं और छिपते हैं। ऐसा उन सब का स्वभाव है।

ये लोग भी अन्य आदिम जातियों की भांति ही वस्त्र का कम उपयोग करते हैं। जानवरों की खालें, या कोई भद्दी सी बुनाई का वस्त्र कमर के चारों ओर लपेट लेना इनकी एक मात्र पोशाक है। और यह भी घुटनों से ऊपर तक ही होता है, शेष सभी शरीर को नग्न रखने में ही इन लोगों की रुचि है। स्त्रियों का पहनावा भी ऐसा ही है। वह भी शेष शरीर पर कोई वस्त्र नहीं पहनती।

पर चाहे जो हो ये लोग बड़े परिश्रमी होते हैं। यदि कठोर परिश्रम न करें, तो इन भयानक वनों में रह कर ये लोग अपने इस पापी पेट की पूर्ति कैसे करें। रक्त पसीना एक करके भी यदि इन्हें ऐसा करना पड़े, तो ये लोग हर्ष-पूर्वक करते हैं। इतनी कठिनाई से रोटी उत्पन्न करने के पश्चात भी इन्हें इसी भूमि से प्यार है। इस से निकल कर कहीं चले जाने का विचार भी इनके मस्तिष्क में कभी नहीं आया। इनका विचार है, कि यह वही देश है जहां हमारे भगवान ने हमें भेजा है, फिर यदि उसकी आज्ञा के बिना हम इसका परित्याग करदें, तो वह रुष्ट हो जायेगा, और फिर हमें कहीं भी पृथ्वी पर ठौर प्राप्त नहीं होगा। इस लिये हमें अपनी भूमि का, चाहे वह भली बुरी कैसी भी है, त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि हम यहां पैदा हुए हैं, इस लिये यहीं हमें मरना भी होगा। अपने देश का त्याग करना ये लोग महा पाप समझते हैं, इनका विश्वास है कि सिवाये इन भयानक वनों के पृथ्वी पर अन्य कहीं भी हमारी रक्षा नहीं हो सकती। यही कारण है, कि ये लोग अन्य कहीं भी जाना नहीं चाहते।

निपट तथा निरक्षर होने के कारण जहां इन लोगों में अनेक त्रुटियां आगई है, वहां इन में एकाध अच्छी बात भी मिलती है, जो इनके जीवन में श्वेत प्रकाश की भांति जगमगा उठती है कि ये लोग बात के बड़े धनी होते हैं। शरण में आये हुए की रक्षा अपना रक्त दे कर भी करते हैं।

यदि इन लोगों में कोई बीमार हो जाये तो यह किसी डाक्टर या हकीम की खोज नहीं करते, बल्कि उसको ईश्वर के आसरे पर छोड़ देते हैं।

ऐसी अवस्था में केवल भगवान 'खोजिग' से रक्षा का दान मांगने के अतिरिक्त ये लोग कुछ नहीं करते, और ऐसा देखा गया है, कि इनकी प्रार्थना स्वीकार भी हो जाती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है परन्तु स्वय हम सभ्य कहलाने वाले लोग भी तो प्रायः अनेक बार, ऐसा कहा करते हैं, कि 'दवा से दुआ' में अधिक प्रभाव होता है। आखिर हम लोगों ने भी इसे यूं ही नहीं कह दिया अपितु इसके पीछे किसी न किसी सत्य का पुट अवश्य ही स्थित है।

यही इन लोगों के पूजनीय देव हैं। इन्हीं में यह लोग अपनी पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। इसके अतिरिक्त भूत-प्रेत आदि में भी ये लोग अपना विश्वाश रखते हैं।

चेचक अर्थात माता के रोग को यह लोग सब से भयानक रोग मानते हैं। इसे ये लोग किसी शैतान का प्रकोप विचार करते हैं। इन का विचार है कि यह शैतान अराकान की पर्वत मालाओं में ही कहीं छुपा रहता है और जब यह देखता है, कि अब हमारा 'खोजिग' पिता सो रहा है, तो अवसर पा कर यह दुष्ट हमें सताने के लिये बाहर निकल आता है, और अपने इस भयानक प्रकोप को हम पर छोड़ देता है। ऐसी अवस्था में भी ये लोग किसी चिकित्सा आदि का प्रबन्ध नहीं करते बल्कि इसे नष्ट करने के लिये अन्य तान्त्रिक क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। यदि फिर भी यह भयानक रोग इनका पीछा न छोड़े, तो ये लोग रोगियों को दूर जंगल में छोड़ आते हैं, तथा एक या दो आदमी उनकी देख भाल के लिये वहां नियुक्त कर देते हैं।

कितना पिछड़ा हुआ जीवन है इन लोगों का! यह सब अविद्या का ही प्रभाव है, कि ये लोग अपने आप को ऊंचा नहीं उठा पाते। इसके अतिरिक्त इसका एक कारण और भी है, कि इनके आस पास का सैंकड़ों मीलों का भूभाग आदिवासियों का ही क्षेत्र है, जो सब के सब असभ्य और अशिक्षित हैं। परन्तु इसमें इन लोगों का कोई दोष नहीं, क्योंकि ये लोग वास्तव में बड़े भोले भाले हैं। यह सत्य है, कि ये भयानक पशुओं के समान

हिंसक हैं, परन्तु इसमें इनका क्या दोष ? हम लोगों ने ही जो सभ्य कहलाते हैं, इनकी उपेक्षा करते हुए हर समय इनसे घृणा की है, और कभी इन्हें अपने निकट नहीं आने दिया। इसी लिये अन्य सभ्य जातियों से मिलने जुलने की इच्छा इन में नहीं रही।

यहाँ यह बात कह देना अनुचित न होगा, कि इन्हों ने भी कभी अवश्य ही अच्छे दिन देखे होंगे, जिसकी छापें इनके अंधेरे जीवन में कहीं कहीं चमक उठती हैं। पाप तथा पुण्य का विचार इनके हृदय में भी उठता है, जो इस बात का प्रमाण है, कि कभी न कभी इनका भी कोई धर्म अवश्य ही होगा, जो नष्ट तो हो गया, परन्तु उसकी दृढ़ छापें आज भी इनके पिछड़े हुये विचारों से प्राय: फूटा करती हैं।

संसार की सृष्टि की कहानी ये लोग इस प्रकार बताते हैं, कि आज से करोड़ों वर्ष पूर्व हमारा सब से पहला आदि मानव 'तलन्द्रकश' एक गुफा से बाहर आया। यहाँ यह बताना अवश्यक है कि योरुपियन विद्वानों के कथनानुसार अन्तिम पाषाण युग के प्रारम्भ में पृथ्वी पर चौथी बार हिम का आक्रमण हुआ और यह बर्फ भूमध्य रेखा की ओर भी कुछ बढ़ आई थी। समस्त भूमध्य रेखा को तो यह अपनी लपेट में न ले सकी, क्योंकि जलवायु अथवा वातावरण में कुछ परिवर्तन आ जाने से इसका प्रभाव पहले से बहुत कम रह गया था। फिर भी शीत के प्रभाव से अपनी रक्षा करने के लिये पशुओं ने बड़ी बड़ी गुफाओं में जा कर अपनी रक्षा की थी। कई विद्वानों का विचार है, कि इस युग से कुछ ही पूर्व पृथ्वी पर मानव की रचना हो चुकी थी, परन्तु अनेक विद्वान इस कथन से सहमत नहीं ! उनका विचार है, कि मानव की रचना अन्तिम 'पाषाण युग' में ही कहीं कहीं हुई थी, और पाषाण युग ही मानव की उत्पत्ति का सब से पहला काल माना गया है, इसी लिये इस युग को पाषाण युग कहते हैं। इस से पूर्व के तीन युग पाषाण युग नहीं थे, बल्कि यह पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले अन्य अनेक जीवों की रचना के काल थे। पर यह तो कोरी कल्पनाएं हैं। झूठे सच्चे प्रमाणों की ओट लेकर

हवाई घोड़े दौड़ाये गये हैं। जिन कल्पनाओं को सजीव करने के लिये उन्होंने किन्हीं विशेष प्रमाणों को आधार माना है, वे भी तो गलत हो सकते हैं, बिल्कुल उसी तरह, जैसे कि किसी क़त्ल हो जाने वाले व्यक्ति के पेट से छुरा निकालने वाला व्यक्ति क़ातिल नहीं हो सकता। यह ठीक है, कि जब अन्य लोगों ने उसके हाथ में रक्त से भीगा हुआ छुरा देखा, तो उन्होंने यह कह दिया, कि यही क़ातिल है, परन्तु आप ही बताइये कि क्या वह वास्तव में क़ातिल है? यदि रक्षा या उसके निर्दोष होने का कोई प्रमाण वहां नहीं मिलता, और केवल एक ही प्रमाण मिलता है, जो कि उसके विपक्ष में जा रहा है, तब ऐसी अवस्था में उसी प्रमाण के आधार पर उसे पूर्ण-रूप से क़ातिल तो घोषित कर दिया जाता है, परन्तु वास्तविक सत्य से सभी दूर चले जाते हैं। यही हाल इन पाश्चात्य विद्वानों का है। भारतीय विद्वान इस बात से कभी सहमत नहीं हुए। पाश्चात्य शिक्षा से अलंकृत भारतीय विद्वान भले ही उनकी हर बात के पीछे दौड़ते चले जायें, क्योंकि उनकी शिक्षा का आधार ही पाश्चात्य रंग में रंगा हुआ है, कभी अपने देश के महत्त्व का अवलोकन करने का तो उन्हें समय ही नहीं मिला, इसलिये भले ही वे कुछ कहते रहें पर भारतीयता की शिक्षा से विद्वान बनने वाले महान पुरुष उनकी किसी बात पर कभी विश्वास नहीं करते।

हां, तो हम पीछे कह रहे थे, कि 'श्यांग' लोगों का अपना मत है, कि उनकी सृष्टि उसी आदि-पुरुष से हुई थी, जो एक बार गुफ़ा से बाहर आया था।

पहले तो यह आदि-पुरुष बिल्कुल अकेला ही रहता था, और इसी प्रकार न जाने कितने वर्ष उसने बिल्कुल अकेले पन में ही बिता दिये, परन्तु यह अकेला पन उससे अधिक न सहा गया, वह इतना शक्तिशाली तथा प्रतापी था, कि संसार के अन्य किसी भी जीव से न डरता था, क्योंकि पशु-पक्षी तो उस समय इस जगत में पैदा हो चुके थे, परन्तु अकेला होने पर उसे

इन से कोई भय नहीं था। अपनी उसी शक्ति के प्रभाव से उसने भगवान की पुत्री से विवाह कर लिया।

विवाह के पश्चात अपने दामाद "तलन्द्रकपा" तथा अपनी पुत्री को विदा करने के लिये भगवान ने संसार में विचरने वाले सभी जीवों को आज्ञा दी कि वे मेरे महल से लेकर 'तलन्द्रकपा' की गुफा तक एक ऐसा मार्ग बनायें, जिस पर हो कर इन मानव दम्पतियों को गुफा तक पहुँचाया जा सके। सभी जीवों ने भगवान की इस आज्ञा का सच्चे दिल से पालन किया, परन्तु कुछ विशेष जीवों ने इस आज्ञा को ठीक प्रकार नहीं निभाया, जिससे रुष्ट हो कर भगवान ने उन्हें शाप दे दिया, कि जाओ आज से तुम्हें सूर्यास्त के उपरान्त कुछ दिखाई नहीं देगा। इन जीवों में केचवे तथा बन्दर के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं, क्योंकि इन्होंने भगवान की आज्ञा का ठीक रूप से पालन नहीं किया था। इसीलिये इन्हें सूर्यास्त के उपरान्त कुछ दिखाई नहीं देता, और ये सब भगवान के दिये हुए उसी शाप का फल है।

स्यांग आदि-पुरुष 'तलन्द्रकपा' की वह गुफा आज भी उसी प्रकार स्थित है, जितना कि स्वयं उसके काल में थी। परन्तु यह इन लोगों के देश से काफ़ी दूर लुशाई पर्वत मालाओं में एक अत्यन्त निबीड़ तथा भयानक जंगल में स्थित है।

अब इस गुफा का रूप आज इतना भयंकर हो गया है, कि स्वयं ये लोग भी उसमें घुसने का साहस नहीं रखते। बताया जाता है, कि यह गुफा पर्वत के भीतर ही भीतर मीलों तक चली गई है। इनके मुख से सुनी जाने वाली इनकी सृष्टि की यह कथा कहाँ तक सत्य है, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु जहाँ तक इस से सम्बन्धित इस गुफा का उल्लेख है, वह पूर्ण-रूपेण सत्य है, क्योंकि यह गुफा आज भी अपना भयानक मुख खोले उसी प्रकार लुशाई पर्वत में स्थित है, जैसे कि पहले कभी रही होगी, और इतना ही नहीं बल्कि ये लोग तो यहाँ तक कहते हैं, कि यदि कान लगा कर ध्यान पूर्वक सुना जाये, तो आज भी इस गुफा में से पुरुष तथा नारी कण्ठ के अनेक स्वर

बातें करते सुनाई दिया करते हैं। इन स्वरों को ये लोग अपने आदि-पुरुष 'तलन्द्रकपा' तथा भगवान की पुत्री के ही स्वर मानते हैं। इनका विश्वास है, कि वे दोनों अमर हैं, इसलिये गुफा से बाहर नहीं आते, परन्तु रहते इसी में हैं।

एक और अनोखी बात इनके मुख से सुनने में आती है, कि वर्षा के समय जब बादल गरजते हैं, तो यह गर्जन बादल या बिजली की नहीं होती, अपितु यह एक तोप है, जिसे हमारे आदि-पुरुष 'तलन्द्रकपा' ने अपने विवाह के के अवसर पर भगवान को भेंट किया था।

जंगली पशुओं के प्रति भी इनके यहाँ एक लोक-कथा प्रचलित है, जो इस प्रकार कही जाती है, कि पहले पहले ये लोग मांसाहारी नहीं थे, परन्तु जब भोजन का अभाव होता था, तब विवश हो कर इन्हें पशुओं का मांस खाना पड़ता था। किन्तु उस जमाने में पशु पक्षी तथा अन्य सभी जीव, यहाँ तक कि वृक्ष भी मानव की भांति ही बोलते थे। जब भी इन्हें भोजन की आवश्यकता होती, तो ये वृक्ष से फल तोड़ने अथवा किसी जीव की हिंसा करने की कोशिश करते थे। ज्यों ही ये लोग उन पर प्रहार करना चाहते, उसी समय वे गिड़गिड़ाते हुये इन से प्राण-दान की भीख मांग उठते थे, इस पर इन्हें दया आ जाती और ये उन्हें छोड़ देते। परन्तु इस तरह दया करते करते इन्हें भूखा मरना पड़ता था।

तब एक दिन पापी पेट की आग से पीड़ित हो कर इन्हों ने भगवान की पुत्री से अपना दुःख कहा। उसने तुरन्त जा कर अपने पिता सर्वशक्तिमान परमेश्वर से अनुरोध किया, कि वह मानव के अतिरिक्त संसार के सभी जीवों को वाणी से हीन करदें, जिससे उसके पुत्र भूख से बच जायें। भगवान ने उसी समय पुत्री का अनुरोध स्वीकार कर लिया और मानव को छोड़ कर सृष्टि के समस्त जीवों से बोलने की शक्ति छीन ली। उस दिन से ही ये लोग पेट भर कर भोजन पाते हैं। और आवश्यकतानुसार, कन्द, मूल, फल के अतिरिक्त मांस भी प्राप्त कर लेते हैं।

कितनी अनोखी किंवदन्ती है यह, परन्तु कौन कह सकता है कि इसमें सत्य का कितना अंश है। इसमें सदेह नहीं कि यह भी अनेक देशों अथवा सम्प्रदायों की आदिम-कहानियों जैसी एक कहानी है।

स्यांग लोगों का कहना है कि पहले हमारा देश और था। हम पृथ्वी से ऊपर रहा करते थे। सम्भवत इनकी यह बात पूर्ण-रूपेण सत्य ही हो। जब 'तलन्द्रकपा' की गुफा लुशाई पर्वत पर है, तो ये लोग उससे सैकड़ों कोस दूर यहां सागर के निकट के पर्वतों में कैसे आ बसे जबकि लुशाई पर्वत पर आज इस जाति के मानव की परछाईं तक दिखाई नहीं देती ? वैसे यह लोग वहां आते जाते हैं, क्योंकि उस गुफा को यह अपना आदि-स्रोत तथा एक तीर्थ-स्थान समझते हैं। परन्तु स्यांग जाति से सम्बन्धित अब कोई भी आदमी वहां नहीं रहता।

इनको अपना देश क्यों छोड़ना पड़ा, इसका वर्णन स्वयं इन्हीं के मुख से सुन लीजिये। इसमें हमें सत्य का कुछ आभास मिल सकता है।

इनका कहना है, कि हमारे आदि-पुरुष 'तलन्द्रकपा' को विवाह किये अभी थोड़े ही वर्ष हुये थे, कि हमारे देश के वनों में अचानक भयानक अग्नि लग गई। सारा का सारा देश जल उठा। न जाने यह ज्वाला कैसे लगी। परन्तु जब यह अग्नि फैलती फैलती हमारे आदि-पुरुष की गुफा के निकट पहुँची, तो उसने अपने बच्चों को, अर्थात् हमें सुरक्षित करने के लिये, उस ऊँचे देश से यहां समुद्र के निकट के पर्वतों पर उतर आने का आदेश दिया, तभी से हम यहां आबाद हैं। हमारे आदि-पुरुष तथा भगवान की पुत्री हमारी जननी का क्या हुआ, इस के बारे में हमें कुछ पता नहीं चलता।

इन लोगों की इन लोक-कथाओं में जो कुछ छिपा हुआ है, उसके आधार पर हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं, कि कभी न कभी इन लोगों की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, तथा साहित्य अवश्य ही उन्नत रहे होंगे जो आज प्रायः नष्ट हो गये हैं। इस विषय में यदि भारत के प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया जाये, तो इनके बारे में बहुत कुछ पता लग सकता है। इन

ग्रंथों में इन के वास्तविक स्वरूप का परिचय मिल सकता है। वास्तव में ये हमारे ही माँ जाये भाई हैं, जिनका धर्म संस्कृति, साहित्य तथा सभ्यता कभी एक ही था। परन्तु न जाने किन कारणों वश ये हम से खो गये, और जब मिले भी, तो अवस्था ऐसी थी, कि अपने बराबर बसे हुए इन भाइयों को हम पहचान भी न सके, क्योंकि परिस्थितयों तथा ज़माने के उतार चढ़ाव ने इनका सब कुछ छीन कर इन्हें अशिक्षित तथा असभ्य बना दिया था, परन्तु एक माँ के गर्भ से उत्पन्न होने वाले दो भ्राताओं के रक्त में जो आन्तरिक शक्ति निहित है, वह हमें अब झंझोड़ २ कर बता रही है कि देखो··· इन्हें पहचानो,···यह तुम्हारे वही भ्राता हैं···जिन्हें आज से हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व तुम से दूर होना पड़ा था। ···आज यह तुम्हारे कितने निकट बैठे हैं, तुम्हारी ओर आतुर नेत्रों से निहार रहे हैं···इन्हें सहारे की आवश्यकता है,···आगे बढ़ो,···इन्हें सहारा दो, और संभाल कर अपनी छाती से लगा लो, धीरे धीरे उनके जीवन में शिक्षा की एक ऐसी ज्योति जला दो, जिससे वे अपने आप को सुधारने में सफल हो सकें।

खासी प्रदेश के निवासी

इस जगत में अनेक प्रकार के मनुष्य रहते हैं। न जाने कितनी प्रकार के तो उनके वर्ण है। कोई गोरा, कोई काला, कोई गेहुँआ तो कोई सांवला कोई तांबे जैसे वर्ण का, तो कोई पीत वर्ण का। इन की कोई गिनती नहीं। हमारा भारत भी अगणित जातियों का देश है। 'खासी' भी एक विचित्र प्रकार की पहाड़ी-जाति है। इन का प्रदेश वास्तव में शीलांग तथा चिरापूंजी के मध्य की पहाड़ियों में है। दूसरे शब्दों में यदि इस प्रदेश को सर्पों का देश कहा जाये, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। कारण यह है, कि खासी लोग बड़ी श्रद्धा से सांपों की पूजा करते हैं। यही नहीं अपितु इस प्रदेश में सांप इतनी अधिक संख्या में पाये जाते हैं, कि यदि कोई बाहर का मनुष्य वहाँ जा कर रहने लगे, तो सांप देख देख कर ही वह मारे भय के थोड़े ही दिनों में इस प्रदेश को छोड़ने पर विवश हो जाये। वास्तव में खासी प्रदेश एक प्रकार से सर्प-भूमि ही है।

सर्पों की पूजा में इन की इतनी अधिक श्रद्धा है, कि बहुत से खासी लोग तो कभी कभी उसे प्रसन्न करने के लिये, उसके समक्ष मनुष्य का वध करके उसका रक्त चढ़ाते हैं। वैसे पहले की अपेक्षा यह प्रथा अब नाम मात्र को ही रह गई है। परन्तु फिर भी कहीं कहीं यह काण्ड अब भी हो ही जाते हैं। फिर भी सरकार की ओर से इस पाप कर्म पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गई है। जिस कारण बहुत से लोगों ने यह कार्य छोड़ दिया है।

मनुष्य का वध प्रायः ऐसी स्थिति में किया जाता है, जबकि कोई भयानक सर्प किसी के घर में अपना अड्डा बना ले, तथा किसी भी उपाय से घर को छोड़ने का नाम न ले। ऐसी दशा में ये लोग मनुष्य-हत्या जैसा क्रूर कर्म करने पर उतारू होते हैं। सर्प के घर में जम जाने पर इन लोगों को जीवन का भय हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन लोगों की धारणा हो

जाती है, कि अब सर्प देवता हम से रुष्ट है, वह तभी हमारा पीछा नहीं छोड़ता। और तब तक उस की यही दशा रहेगी, जब तक कि उसे मानव का रक्त न चढ़ाया जाये।

हत्या करने से पहले इन लोगों में एक विश्वास बुरी तरह जमा रहता है, कि जिस व्यक्ति को भी शिकार के लिये निश्चित किया जाय फिर उसका ही रक्त सर्प देवता को चढ़ाया जाता है, किसी और का रक्त चढ़ाने से सर्प देवता इतना रुष्ट हो जाता है, कि फिर वंश मिटा कर ही पिंड छोड़ता है। इसलिये शिकार करने से पूर्व यह बात ध्यान में रखी जाती है, कि लक्ष्य पर ही दाव चले।

मनुष्य का शिकार करने के लिये, इन्हें तीर कमान, बन्दूक तथा तलवार आदि हथियारों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार का शिकार करने का ढंग बिल्कुल अनोखा, तथा आश्चर्य जनक है। जो भी व्यक्ति यह कर्म करने के लिये तैयार होता है। वह पहले नहा धो कर अपनी देह को पवित्र करता है। इसके पश्चात शुद्ध-वस्त्र धारण करता है। शिकार को जाते समय उसके पास एक कैंची, एक चाकू, तथा एक सूआ आदि होना अनिवार्य है। ये सब चीजें चांदी की होती हैं। लोहे के बने हथियारों का उपयोग वर्जित है। हल्दी मिले चावलों के कुछ दाने भी साथ होने आवश्यक हैं। जिस व्यक्ति को शिकार का लक्ष्य बनाया जाये, उसे कोई रोग नहीं होना चाहिये, तथा उसका कोई अंग नष्ट हुआ नहीं होना चाहिये। ये सब बातें ध्यान में रख कर ही शिकार को प्रस्थान किया जाता है।

एक बात अत्यन्त आवश्यक यह भी है, कि यह शिकार किसी भी हथियार आदि से नहीं किया जाता। जो आदमी शिकार के लिये प्रस्थान करता है, यदि उसे आवश्यकता अनुसार कोई व्यक्ति सर्व-गुण सम्पन्न प्रतीत होता है, तो वह एक मंत्र पढ़ कर साथ लाये हुए चावल के दाने नियत व्यक्ति की ओर फेंकता है। इसके प्रभाव से वह आदमी शक्तिहीन हो कर चुपचाप खड़ा हो जाता है। ऐसी अवस्था में शिकारी व्यक्ति बड़ी

सरलता से उसे रस्सी से बाँध लेता है। फिर उसे धरती पर लिटा कर साथ लाए हुए हथियारों से उसके कुछ केश काट लेता है। सूए से उसके नयनों को फोड़ कर कुछ रक्त एकत्रित कर लेता है। और इन सब वस्तुओं को लेकर पुनः घर लौट आता है। इस अवसर पर घर में बड़ा हर्ष मनाया जाता है। तथा युक्ति अनुसार ये वस्तुएँ सर्प देवता के अर्पण कर दी जाती हैं।

इसका प्रभाव यह होता है, कि फूटे हुए नयने वाला व्यक्ति धीरे धीरे बीमार होने लगता है, और कुछ दिन के पश्चात तड़प तड़प कर मर जाता है। उसकी मृत्यु होते ही सर्प देव उस घर का परित्याग कर कहीं अन्यत्र चले जाते हैं।

परन्तु यह कुछ काल पूर्व की बातें हैं। अब तो ऐसे नीच कर्म कोई नहीं करता। फिर भी कहीं कहीं कभी ऐसे दुष्ट व्यक्ति मिल ही जाते हैं।

इनके घरों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये लोग बिल्कुल जंगली हैं। पर यदि भीतर जा कर उन्हें देखा जाये, तो ऐसा लगता है जैसे किसी राजपूत के घर में आ गये हों। प्रत्येक घर में आपको धनुष-बाण, ढाल, तलवार आदि देखने को मिलेंगे, जिस से यही प्रतीत होता है, जैसे ये लोग किसी युद्ध-प्रिय जाति से सम्बन्धित हैं। वास्तव में बात ऐसी ही है। ये लोग बड़े अनोखे निशाने-बाज होते हैं। युद्ध कला में इन्हें पूर्ण रूप से निपुणता प्राप्त होती है।

जनवरी के पश्चात खासी लोग निशाने बाजी का खेल खेलते हैं, जिसमें सभी निशाने बाज भाग ले सकते हैं। यह इस प्रकार होता है, कि एक गाँव के आदमी दूसरे गाँव के आदमियों को चुनौती देते हैं। यदि उस गाँव के आदमी इसे स्वीकार कर लें, तो फिर खेल खिलाने वाले, तथा खेल में भाग लेने वाले लोगों का चुनाव होता है। जब दोनों पक्षों के लोग अपना चुनाव कर लेते हैं, तो खेल के लिये एक विशेष दिन निश्चित कर दिया जाता है।

जब निश्चित दिवस आता है, तब एक स्थान पर सब आदमियों के धनुष-बाण एकत्रित कर दिये जाते हैं। इसके पश्चात दोनों पक्षों के लोग एक मत हो कर अपना एक मध्यस्थ चुनते हैं। यही मध्यस्थ उन सब खिलाड़ियों

को धनुष-बाण आदि उठाने की आज्ञा देता है। आज्ञा मिलते ही सब लोग अपने अपने धनुष और बाण उठा कर नियत स्थान पर अलग अलग पंक्तियों में खड़े हो जाते हैं और खेल प्रारम्भ होता है। दोनों पक्षों के खेल खिलाने वाले अपनी अपनी योग्यता अनुसार खिलाड़ियों को बाण चलाने की आज्ञा देते रहते हैं। खेल का निर्णय खेल की समाप्ति पर दोनों पक्षों द्वारा चुना गया मध्यस्थ ही करता है। तथा इसी की आज्ञानुसार खेल समाप्त किया जाता है।

इस खेल को देखने के लिये आसपास के ग्रामों के हजारों आदमी एकत्रित होते हैं। स्त्रियां भी इस दिन किसी से पीछे नहीं रहतीं। वे खेल में भाग लेने वालों को समय समय पर जल-पान आदि कराती रहती हैं।

वैसे तो ये लोग अपने आप को हिन्दू ही मानते हैं, परन्तु मूर्ति-पूजा की ओर इन का सर्वथा झुकाव नहीं है। किसी नर्क आदि की कल्पना भी इनके विचारों में नहीं है। इन लोगों का विश्वास है, कि मरने के पश्चात मनुष्य ईश्वर के स्वर्ग रूपी कानन में जाता है, जहाँ पहुँच कर उसे फिर किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं रहता।

खासी लोगों में अपने मृतक-जनों का अन्तिम संस्कार करने की रीति भी बड़ी विचित्र है। सर्व प्रथम ये लोग अपने मुर्दे को गरम पानी से स्नान करा कर कफ़न आदि पहनाते हैं, इसके बाद उसे कुछ आभूषण भी पहनाये जाते हैं। फिर उसके मस्तक में कच्चे धागे लपेटे जाते हैं। यह सब कुछ हो जाने के बाद शव को किसी एकान्त कमरे में लिपे हुये स्थान पर नई चटाई बिछा कर लिटा दिया जाता है। यदि वह शव किसी पुरुष का हो, तो एक मुर्गे की बलि दी जाती है, अन्यथा स्त्री होने पर बैल की बलि चढ़ाई जाती है। बैल का निचला जबड़ा, तथा मुर्गे की बायीं टांग शव के निकट रख दी जाती है। तथा इन जानवरों का मांस किसी वस्त्रादि में बांध कर जिस स्थान पर शव को लिटाया गया हो; उसके ऊपर छत से लटका दिया जाता है। तथा उसके पेट पर खाने पीने की वस्तुएं रख दी जाती हैं। तीन दिन तक शव को उसी [illegible] रहने दिया जाता है। इसके बाद उसे श्मशान में ले जाकर विधि-पूर्वक फूंक

दिया जाता है। इस अवसर पर सूअर की बलि दी जाती है। शव को आग में डालने से पूर्व उसके निकट कुछ धन भी रख दिया जाता है। इन लोगों की धारणा है, कि मृत प्राणी ईश कानन की यात्रा को जा रहा है, और वहां तक पहुँचने में उसे कई दिन लगेंगे। इस धन से रास्ते में वह अपने खान पान के लिए कुछ वस्तुएँ खरीद सकता है। यदि रुपये न रखे जायें, तो उसे भूख से व्याकुल हो कर भटकते फिरना पड़ता है।

ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है, कि किसी समय ये लोग सम्पूर्ण आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों पर राज्य करते थे। कहा नहीं जा सकता कि इनका राज्य कैसे मिट गया। पर कुछ बातें इन में ऐसी दिखाई पड़ती हैं, जिन से इनके गौरवपूर्ण अतीत की कल्पना की जा सकती है।

आजकल तो ये लोग अधिकतर मजदूरी करके ही जीवन निर्वाह करते हैं, शिक्षा तो उन्हें छू तक भी नहीं गई। अनेक स्थान इस प्रदेश में ऐसे भी मिलते हैं, जिन के प्रति इन लोगों ने अनेक लोक-कथाएँ घड़ रखी हैं। पर उन्हें झुठ भी कहा नहीं जा सकता। भूत-प्रेत आदि के बारे में भी इन लोगों को बड़ा विश्वास है। कड़ा परिश्रम करने के पश्चात ही इन्हें रोटी मिल पाती है। इससे अधिक इन्हें इतना भी समय नहीं मिल पाता कि दो घड़ी चैन से बैठ सकें। कितना निराश जीवन है इन लोगों का। परन्तु फिर भी ये लोग अपना काम करते हैं, और हिम्मत नहीं हारते। यहां तक कि बहुत से लोग तो ऐसे भी दीख पड़ते हैं जो आठ आठ, दस दस, मील दूर जंगलों से चारा तथा लकड़ियां आदि काट कर नगरों में लाकर बेचते हैं, तभी उन्हें पेट भरने के लिये छ मिल पाता है।

इन खासी लोगों के यहाँ जब किसी बालक का जन्म होता है, तो उसके जन्म के समय खूब आनन्द मनाया जाता है, मदिरा तथा नाच-गाने की महफ़िलें गर्म होती हैं। और फिर बच्चों के नाम रखने की विधि भी बड़ी विचित्र है। भारत के अन्य हिन्दुओं की भांति इन में ज्योतिषियों तथा पण्डितों

से बच्चे का नाम ग्रहों के आधार पर नहीं रखवाया जाता, अपितु उसे रखने की रीति बिल्कुल भिन्न तथा बड़ी रोचक है।

जिस दिन बच्चा पैदा हो, उस से अगले ही दिन, उसका नाम रखने के लिये संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। यह इस प्रकार है, कि घर के आंगन को लिपाई द्वारा पवित्र कर के बीच में पुत्र के पिता या अन्य किसी परिवार के वृद्ध व्यक्ति को बिठा दिया जाता है। जिसके पास संस्कार विधि सम्पन्न करने के लिये सभी आवश्यक वस्तुएँ चावल का आटा तथा तीन अथवा पांच रुक्ष मछलियां रख दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त किसी स्वच्छ पात्र में शराब भी भर कर रख दी जाती है यदि शिशु पुरुष-वर्ग से सम्बन्धित है, तब तो एक धनुष बाण भी पास रख दिया जाता है, और यदि कन्या हो, तो बोझा ढोने की रस्सी।

इस अवसर पर गांव के सभी प्रेमी-जनों को बुलावा देकर एकत्रित किया जाता है। जब यह सब कुछ हो जाता है, तो आंगन के बीच बैठा हुआ व्यक्ति शराब से भरा हुआ पात्र लिये खड़ा हो जाता है। और ईश्वर का नाम लेकर उस पात्र से एक एक बूंद नीचे धरती पर टपकाना प्रारम्भ करता है। सभी एकत्रित जन प्रत्येक बूंद के साथ एक एक नाम बारी बारी लेते चलते हैं, जिस नाम के साथ शराब के पात्र की सब से अन्तिम बूंद धरती पर गिर जाती है और मदिरा पात्र बिल्कुल रिक्त हो जाता है। बस वही नाम शिशु का रख दिया जाता है।

जन्म मरण के सभी संस्कार इन लोगों के कितने विचित्र होते हैं! हम से कितने भिन्न! एक देश तथा एक धर्म के अनुयायी होने पर भी हमारे समाज में परस्पर कितना महान अन्तर है। खासी लोग हमारे अपने धर्म के भाई होकर भी हमें कितने विचित्र प्रतीत होते हैं! इन के रीति रिवाज, रहन-सहन खान-पान, यहां तक कि मानव शरीर को छोड़ कर शेष सम्पूर्ण आचरण हमें अपने से बिल्कुल पृथक से प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त यह लोग अपने मुर्दों को जलाते तो हैं, परन्तु इसके पश्चात उनकी हड्डियों को किसी पवित्र स्थान में दबा कर उसके ऊपर समाधियां बनाने का रिवाज भी इन लोगों में पाया

जाता है। बहुत सी समाधियाँ तो इतनी विशाल होती हैं कि उन्हें देख कर आश्चर्य होता है, कि ये इन लोगों ने किस प्रकार बनाई होंगी। वास्तव में यह पत्थर के बड़े ऊंचे ऊंचे स्तम्भ होते हैं। वैसे इन में कला आदि का कोई विशेष काम नहीं होता, परन्तु इनकी बनावट ही ऐसी होती है, जिसे देख कर बुद्धि चकित हुए बिना नहीं रहती।

अब सरकारी सहायता से इन्हें शिक्षित करने की चेष्टा की जा रही है। आशा है, कि सुशिक्षित हो कर ये लोग अवश्य ही अपने आप को पहचानने की चेष्टा करेंगे। और सच्चे नागरिक बन कर अपने देश भारत, अपने धर्म तथा अपने समाज का उत्थान कर विशाल भारत का भविष्य उज्जवल करेंगे।

थारु प्रदेश के निवासी

न जाने इस पृथ्वी पर कितने मनुष्य बसते हैं। संसार का तनिक भ्रमण कर देखिये, थोड़े थोड़े अन्तर पर ही अनोखा मानव, उसका अनोखा समाज तथा उसका आश्चर्य-जनक स्वभाव आपको चकित करता चलेगा। यहाँ तक कि एक ही जननी की कोख से उत्पन्न हुये दो भाई यदि एक दूसरे से बिछड़ कर विभिन्न प्रदेशों में रहने लगें, तो उन में भी कुछ दिनों के पश्चात काफ़ी अन्तर दीख पड़ेगा। न जाने इस विश्व में रहने वाले मानव ने कितने समाज बनाये हैं। और किस प्रकार अपने आप को उनका अनुयायी बनाया है।

संसार में अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ कोई भी मनुष्य रहना नहीं चाहता। जहाँ जीवन सर्वथा नीरस तथा व्यर्थ है परन्तु वहाँ भी मानव रहता है। शायद वह वहाँ रहने का अभ्यासी हो चुका हो। परन्तु बहुत से लोगों को ऐसे स्थानों पर रहना असम्भव अवश्य प्रतीत होता है। आज एक ऐसे ही प्रदेश का उल्लेख करेंगे, वह है थारु प्रदेश। बहुत से जानकारों का मत है, कि प्रारम्भ में यह प्रदेश बिलकुल मानव से शून्य था। परन्तु आज यहाँ थारू जाति के लोगों का वास है। आज इन लोगों को यहाँ देख कर यह निश्चय होता है, कि भूख, मुसीबतें, तथा मानव की घुमक्कड़ प्रकृति ने उसे पृथ्वी के खण्ड २ पर घुमा कर आबाद कर दिया है। जब थारु लोग यहाँ आ कर बसे, तो उस समय यह प्रदेश भयंकर वनों से पटा हुआ था। जंगली जानवरों की भयानक चिघाड़ें चारों ओर सुनाई दिया करती थीं। अथक परिश्रम से दिन रात लग कर इन्हों ने इस भूमि को अपने रहने योग्य बनाया, तथा भूखे पेट की तृप्ति करने के लिये चार दाने अन्न पैदा करने योग्य साधन जुटाये। प्रारम्भ में तो इन लोगों को बड़े बड़े दुःख उठाने पड़े। परन्तु समय ने इन्हें यहीं बस जाने को विवश कर दिया। यहाँ के अतिरिक्त अन्य कहीं भी इन्हें अपनी सुरक्षा दिखाई नहीं दी। दुःखों को सहते सहते, इन्हों ने अपने

आप को मुसीबतों से टक्कर लेने का अभ्यस्त बना लिया। अब प्रश्न उठता है, कि वास्तव में यह थारू लोग कौन थे ? तथा इन्हें अपना देश क्यों छोड़ना पड़ा। और इस प्रदेश को ही इन्हें अपना सुरक्षा-स्थान क्यों मान लेना पड़ा। संसार इतना विशाल है फिर भी कहीं अन्यत्र किसी सुन्दर भूमि को इन्होंने अपना निवास स्थान क्यों नहीं बनाया ?

किन्तु मनुष्य की इच्छा से परिस्थितियां कहीं अधिक बलवती होती हैं। यही उक्ति इन थारु लोगों पर भी लागू होती है। इससे पहले कि इन लोगों के रहन-सहन आदि अथवा सामाजिक जीवन पर कुछ कहा जाये, इस थारु प्रदेश की स्थिति आदि को जान लेना आवश्यक है। इसका इनके सामाजिक जीवन से एक बहुत बड़ा सम्बन्ध है, तथा जिस समय इन लोगों ने इस प्रदेश में शरण ली थी, उस समय संसार में यही प्रदेश इन्हें अपना एक मात्र सुरक्षा स्थान दीख पड़ा था।

थारु प्रदेश वास्तव में हिमालय पर्वत पर स्थित उस अनोखे प्रदेश का नाम है, जो नैनीताल के पूर्व में नैपाल राज्य की पश्चिमी सीमा के साथ बड़ी दूर तक फैला हुआ है। घोर वनों से ढके हुये पहाड़ी स्थल इतने भयंकर हैं, कि मार्ग तक नहीं मिलते। जंगलों में भयानक जानवरों का बास है, जिन से हर समय प्राणों का भय रहता है। और सब से बुरी चीज जो इस प्रदेश में प्रायः पाई जाती है, वह है यहां का निकृष्ट जलवायु जिससे स्वास्थ्य सदा बिगड़ा ही रहता है। मच्छर इतने अधिक होते हैं, कि प्रायः मलेरिया बुखार जोरों पर रहता है। इसके लिये कोई विशेष ऋतु निश्चित नहीं, अपितु वर्ष के बारह महीने इसका प्रकोप रहता है। यहां के लोग मलेरिया से इतना नहीं घबराते। कारण यह है, कि अनेकों पीढ़ियां इन्होंने इसी प्रदेश में बिता दी हैं। इसलिये ये इस जलवायु को सहन करने के अभ्यस्त हो गये हैं। इसी लिये मलेरिया आदि रोगों के कीटाणू इन के शरीर पर अपना प्रभाव नहीं डालते ।

यह प्रदेश देखने में अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है। प्राकृतिक दृश्य अपनी अनुपम शोभा दिखाते हैं। अनेक स्थानों पर कल कल करते हुये निर्मल तथा शुद्ध जल के स्रोत बह रहे हैं और हरयाली की चादरों में दीख पड़ने वाले छोटे २ ग्राम इस देश की शोभा को अनुपम बना देते हैं। परन्तु फिर भी यदि भारत के किसी अन्य प्रदेश का निवासी यहां आ कर इस प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द उठाना चाहे, तो इस से प्रथम कि वह आनन्दित हो, मलेरिया के भयंकर शिकंजे में जकड़ जाता है। और इस व्याधि से उस समय तक उसका पीछा नहीं छूटता, जब तक कि वह इस प्रदेश का परित्याग कर कहीं अन्यत्र न चला जाये। यह हैं इस भूमि के अवगुण, वास्तव में यह सारा दोष जलवायु का ही है। जलवायु के ही दूषित होने से यहां मलेरिया फैलाने वाले मच्छरों की अधिकता पाई जाती है।

इस प्रदेश के वासियों को शिकार खेलने का बड़ा चाव है। कारण यह है कि घने जंगलों के बीच रहने पर इन्हें हर समय जंगली जानवरों का भय रहता है, इसलिये उनका सामना करने के लिये ये लोग हर समय तैयार रहते हैं। निशाना भी इस चोट का बांधते हैं, कि चूकता नहीं। लगभग सभी लोग इस प्रदेश में बन्दूकें रखते हैं। जिन पर कोई लाइसेन्स आदि लागू नहीं होता। परन्तु अब सरकार ने प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिये लाइसेन्स का रखना आवश्यक करार दे दिया है। वैसे इन लाइसेन्सों को प्राप्त करने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ता है। परन्तु इन लोगों को बिना किसी कष्ट के यह लाइसेन्स प्राप्त हो जाते हैं। फिर भी अधिकतर लोग अशिक्षित होने के कारण बिना लाइसेन्स के बन्दूक आदि हथियार रख ही लेते हैं।

पहाड़ियों पर बसने वाले इन थारू लोगों के देश का वास्तकि इतिहास ऐसा है, जिस पर भारत ही नहीं बल्कि समस्त संसार को गर्व है। जहां के महान चरित्र सारी दुनियां के समक्ष आज भी अपना सिर झुकने नहीं देते। भारत का बच्चा २ उसे याद करके मारे गर्व के फूल उठता है।

थारू लागों को आज एक पिछड़ी हुई जाति कह कर हम उन से दूर हो सकते हैं। उन्हें जंगली तथा आदिवासी समझ कर उनका तिरस्कार करते हैं। परन्तु यदि हम उनके पूर्वजों की जीवनियों का अवलोकन करें, तो हमें अपनी भूल ज्ञात हो जाये। जिन्हें आज हम आदिवासी समझते हैं, वास्तव में हमारे ही अङ्ग हैं।

इन थारू लोगों का पुराना देश राजस्थान है। राजस्थान जिसकी धरती ने राजपूतों को जन्म दिया। ऐसे राजपूत जिन्होंने अपनी मातृ-भूमि के रूखे तथा उजाड़ आंचल को अपने वीर रक्त से रंग कर दुनियां को देश-भक्ति का आदर्श सिखाया। जिन्हों ने अपनी मान, मर्यादा तथा धर्म की रक्षा के लिये अपने एक एक बच्चे को रण-भूमि में ले जा कर दुश्मन से चोट खा कर शहीद होना सिखाया था।

आज के ये थारू लोग भी उन्हीं वीर राजपूतों के वंशज हैं। जो अब हमारे लिये आदिवासी बने हुये हैं। जो आज हम से इतनी दूर चले गये हैं कि हमें उन्हें अपना समझने में आश्चर्य होता है।

आज से कई सौ वर्ष पहले जब वीर नगरी चित्तोड़ पर मुसलमानों ने आक्रमण किया, तो राजपूत अत्यन्त चेष्टा करने पर भी उन पर विजयी नहीं हो पाये थे। कारण यह था, कि उनके अपने घनिष्ट सेवकों ने ही उनके साथ विश्वास घात किया था। परिणाम यह हुआ कि राजपूत एक एक कर के कट मरे। चित्तोड़ की रानियों ने अपने आप को शत्रुओं के हाथों सौंपने की अपेक्षा जौहर कुण्ड में झोंक कर अपनी मान मर्यादा की रक्षा करना कहीं अधिक अच्छा समझा। जिससे हमारे पूर्वजों को कोई बट्टा न लगने पाये।

परन्तु राज्य पुरोहितों ने शत्रुओं के साथ मिल कर इन वीर रानियों के साथ भी विश्वासघात किया। रानियां कुण्ड में जलने के लिये पहुँच भी न पाई थीं, कि पुरोहितों का विश्वासघात उजागर हो गया, जिन्होंने भोली भाली रानियों तथा राज-कन्याओं को पकड़ कर शत्रुओं के हवाले कर देने की चाल चली थी। रानियां समय से पहले ही उन की नीच करतूतों को

भाग गईं। पुरोहितों ने उन्हें गिरफ्तार कराना चाहा, परन्तु जिन्होंने सिंहनियों का दूध पिया हो उन्हें पकड़ना कोई साधारण काम नहीं था।

पुरोहितों का विश्वासघात देख कर रानियाँ अवसर पा कर रात के समय वहाँ के महलों से लोप हो गईं। जंगलों, मैदानों, और पहाड़ों की ठोकरें खाती हुई यहाँ इस प्रदेश में आ पहुँचीं। देश के खण्ड खण्ड में रानियों की खोज की गई परन्तु उन का कहीं पता न चला। क्योंकि ये सब एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुँच चुकी थीं, जहाँ उस समय तक शायद ही किसी मानव की पहुँच हो पाई थी।

रानियों को महलों से सुरक्षित निकाल कर इस प्रदेश में ले आने का कार्य, उन वीर राजपूत सिपाहियों ने किया था, जिन्हें उनके सेनापति तथा राजा लोग रण को जाते हुये रानियों की रक्षा के लिये छोड़ गये थे। पुरोहितों के विश्वासघात से राजपूत रानियों की रक्षा करने में इन राजपूत सिपाहियों ने अपनी जान की बाज़ी लगा कर वर्षों से खाया हुआ चित्तौड़ देश का नमक हलाल किया।

इन छोटे छोटे सिपाहियों का इतना महान बलिदान देख कर यह रानियाँ अति प्रसन्न हुईं। परन्तु अब वह उनके इस अपूर्व बलिदान का बदला कैसे चुकातीं! अब तो उनके हाथ खाली थे। किन्तु फिर भी उन्होंने उन राजपूत सिपाहियों को उनके बलिदान हेतु कुछ न कुछ देने का वचन दिया। जब यह रानियाँ थारु प्रदेश की इन घाटियों में आ कर बस गईं, तो राजपूती आन को रखने के लिये, इन रानियों ने अपनी कुमारी पुत्रियों का दान उन्हें दिया। अपनी रानियों से इस अपूर्व दान को पा कर यह राजपूत सिपाही फूले न समाये। और मारे गर्व के उन्होंने अपने अथक परिश्रम से जंगलों को काट काट कर अपनी रानियों को बसाने के लिये इस भूमि को स्वर्ग बना दिया।

राज-कन्याओं से विवाह कर लेने पर भी इन वीर सिपाहियों ने उनका राज-रानियों के समान ही सम्मान रखा। यही कारण है, कि आज भी

विवाह हो जाने के पश्चात वधू को इस प्रदेश के लोग राना कहते हैं। प्रत्येक विवाहित स्त्री का आज भी उसी प्रकार सम्मान किया जाता है, जितना कि एक रानी का।

पुरुष का यही व्यवहार आज इस प्रदेश का सामाजिक कानून बन चुका है। सभी विवाहित पुरुषों को स्त्रियों के आधीन रहना पड़ता है। पत्नी का आदेश मानना पुरुष का धर्म समझा जाता है। और यही नहीं बल्कि पत्नियां अपने पतियों को चौके तक में नहीं घुसने देतीं और ना ही उन्हें वहां बैठ कर भोजन ही करने देती हैं। कारण यह है, कि स्त्रियां अपने आपको आज तक वही रानियां समझती चली आ रही हैं। तथा पुरुष अपने आपको वही दास राजपूत सिपाही समझते चले आ रहे हैं। सैंकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी इन का यह भ्रम अभी तक वैसा ही बना हुआ है। उसमें तनिक भी अन्तर नहीं आया।

इसका यह अर्थ नहीं, कि यहां की स्त्रियां अपने पतियों को कुछ समझती ही नहीं, अथवा उनका निरादर करती हैं। बल्कि वे तो यथासम्भव पति की सेवा करती हैं। पति ही को अपना सर्वस्व समझती हैं। प्रारम्भ में पतियों ने उनपर कोई अनुचित दवाव इसलिये नहीं डाला ताकि उन के हृदय में अपनी पहली महारानियों की स्मृति निरन्तर बनी रहे। परन्तु समय के साथ साथ अब यह एक रीति सी बन गई है। और यही नहीं अपितु परिस्थितियों के चक्कर ने ऐसे ही और भी अनेक नियम इन के जीवन में उपस्थित किये थे। जो आज भी इन लोगों के जीवन में जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। तात्पर्य यह है, कि मनुष्य के कार्य तथा उसकी परिस्थितियों के अनुसार ही उसका समाज पनपता है। और ज्यों २ उसके आचारों में परिवर्तन होता है, त्यों त्यों उसके समाज में भी अन्तर उत्पन्न होता है, इन थारू लोगों को ही देखिये, कि जब यह राजस्थान के निवासी थे, तब इनके कर्म अनुसार इनका समाज कुछ और ही था, परन्तु थारू प्रदेश में बसने के पश्चात् इन का समाज बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का हो गया।

थारू लोग ब्राह्मण जाति से इतनी अधिक घृणा करते हैं, कि उनका मुख सुबह सवेरे देख लेना बड़ा अशकुन मानते हैं। चाहे अन्य भारतीय हिन्दू अपने बीच ब्राह्मणों को अन्य जातियों से श्रेष्ठ भले ही समझते रहें, परन्तु यह थारू लोग ब्राह्मणों को संसार के सब से नीच मनुष्य समझते हैं। यह सत्य है कि जब तक इन के पूर्वज चित्तौड़ के वासी रहे, तब तक उन्होंने इन्हें संसार में सब से श्रेष्ठ जाति का मनुष्य समझा था। परन्तु जब वह अपनी मातृ-भूमि के लिये लड़ते २ शहीद हो गये, और उनकी भोली भाली रानियाँ तथा छोटे २ बच्चे इस जगत में बे सहारा हो कर रह गये, तब इन्हीं लोगों ने नमक हराम हो कर यवनों के हाथों उनके सतीत्व को नीलाम करना चाहा। राजस्थान की भूमि पर बहा हुआ सम्पूर्ण रक्त ऐसे ही लोगों की कृतघ्नता की कहानियाँ दुनियाँ को सुना रहा है। थारू लोगों ने इन्हें संसार की अछूतों से भी अछूत जाति क़रार देकर, इनके हाथ का पानी तक पीना छोड़ दिया है।

आपको आश्चर्य होगा, कि ये थारू लोग सूर्य वंशी राजपूत हैं। इतिहासकारों का मत है, कि चित्तौड़ के राजा अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम के वंशज ही थे (यह बात राजस्थान के इतिहास से भी स्पष्ट हो जाती है, जो कि जनरल टाड का लिखा हुआ है, तथा जगत के समक्ष राजस्थान भूमि का एक श्रेष्ठ खोज-पूर्ण इतिहास है) तथा उन्हीं के देवता, इनके भी देव हैं, तो फिर इनके विवाह तथा मृत्यु आदि संस्कार किस प्रकार ब्राह्मण के बिना सम्पन्न होते होंगे? जब कि रीति अनुसार ब्राह्मण के हाथों ही यह सब कार्य सम्पन्न कराये जाते हैं और प्रत्येक दशा में उसकी उपस्थिति आवश्यक होती है। परन्तु इस का हल भी इन थारू लोगों ने निकाल ही लिया है। ब्राह्मण कुल में जन्म पा कर अपनी रानियों का सतीत्व लुटवाने का घृणित कार्य करने में जब इन्हें लज्जा न आई तो भला थारू किस प्रकार इन का आदर करते। इसीलिये इन लोगों ने ब्राह्मणों से सम्बन्धित अपनी सभी पुरातन परम्पराओं का परित्याग कर दिया है। ये लोग अपने सभी संस्कारों को ब्राह्मणों के बिना

ही सम्पन्न कर लेते हैं। हाँ, शुभ कार्यों के लिये कुछ शुभ तिथियाँ अवश्य निश्चित की गई हैं। बृहस्पतिवार तथा रविवार इन लोगों में श्रेष्ठ दिवस माने जाते हैं। विवाह आदि कार्यों में माघ मास शुभ समझा जाता है। विवाह की रीति भी इन लोगों ने बड़ी सरल तथा बड़ी अनोखी बना रखी है। इसलिये अब वही कहनी उपयुक्त है।

विवाह से पूर्व थारू लोगों में सगाई होती है। कन्या तथा वर के घर वाले जब दोनों को एक सूत्र में बांध देने का निश्चय कर लेते हैं तब वर पक्ष की ओर से कुछ आदमी श्रद्धानुसार मिठाई तथा वस्त्रादि लेकर कन्या के घर पधारते हैं। जहां इन लोगों का आदर-पूर्वक सत्कार किया जाता है। फिर शुभ घड़ी में सभी मेहमान तथा कन्या पक्ष के लोग किसी एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। लड़की तथा लड़के के पिता को परस्पर सामने बैठाया जाता है और फिर शराब बांटी जाती है। लड़की वाला तथा लड़के वाला अपनी प्यालियां एक दूसरे से बदल कर मद्य-पान करते हैं। मेहमानों को शिकार चावल आदि के साथ भोज दिया जाता है। भोज में मछलियां भी रखी जाती हैं। जब यह कार्य समाप्त हो जाता है तब परस्पर शुभ कामनाओं के लिये प्रार्थना की जाती है, और राम-जुहार होती है। सगाई में सब से अन्तिम रीति 'उचावल' की होती है। इस का उल्लेख इस प्रकार है, कि कन्या की माता वर के पिता के पास आ कर उसके पांव छूती है, तथा उचावल प्राप्त के लिये प्रार्थना करती है। इस का अभिप्राय यह है, कि वह लड़की के हार-सिंगार के लिये लड़के वाले से रुपया मांगती है। इस पर लड़के वाला अपनी सामर्थ्य अनुसार कुछ नक़द रुपया लड़की की मां के आंचल में डाल देता है। यह रुपया केवल कन्या के लिये ज़ेवर बनवाने के काम में ही लाया जाता है। अन्य स्थान पर इसका व्यय पाप समझा जाता है।

जब यह सभी काम पूरे हो जाते हैं। तब किसी भी शुभ दिन को विवाह की तिथि निश्चित कर दी जाती है, और सभी वर पक्ष के लोग इसके पश्चात विदा हो जाते हैं। इस प्रकार सगाई की रीति समाप्त हो जाती है।

इस के बाद विवाह का दिन आता है। विवाह अधिकतर माघ मास में ही सम्पन्न किये जाते हैं। विवाह होने के पश्चात जब सब लोग लौट आते हैं, तो वर का पिता अपने घर पर एक शानदार प्रीति-भोज देता है। शराब, मांस, मछली तथा चावलों की खूब दावतें उड़ती हैं। एक सभा भी नियत की जाती है, जिसमें सभी स्त्री पुरुष साथ साथ मिल कर नाचते हैं, तथा साथ साथ ही बैठते हैं। महफ़िल में तम्बाकू पीने का भी इन्हें बड़ा चाव होता है। तम्बाकू की चिलमें भर भर कर महमानों को पिलाने का काम वर करता है। जिसके बदले में बड़े बूढ़े उसे चिरजीवी तथा सुखी गृहस्थ होने का आशीर्वाद देते हैं।

थारू लोगों का रहन-सहन बड़ा सरल है। परिस्थितियों ने इन्हें आदिवासियों की तरह रहने पर मजबूर कर दिया था। इसीलिये आज तक हम इन लोगों को एक जंगली जाति के लोग समझते रहे हैं। परन्तु वास्तव में ये लोग भी हमारी ही तरह आर्य वंशज हैं। हम एक ही देश की मिट्टी से पैदा हुये हैं। हम सब ने एक ही देश का अन्न खा कर जीवन पाया है, इसलिये हमारा खून भी एक ही है।

इस थारू भूमि के निवासियों का पहनावा भी बड़ा अनोखा है। वैसे तो ये लोग केवल एक लंगोटी ही पहने रहते हैं, परन्तु शरद ऋतु आने पर एक मिर्जई नुमा कोट भी पहन लेते हैं। सिर पर ऊनी कपड़े की काले वर्ण की टोपी और कंधे पर कम्बल तो इनके साथ हर समय रहता है। स्त्रियाँ एक कुर्ती, तथा काले रंग के घाघरे का उपयोग भी करती हैं। केश राशि को ढकने के लिये काले रंग के एक रूमाल का उपयोग करती हैं। गहने पहनने का इन्हें बड़ा चाव होता है। देखने में ये स्त्रियाँ इतनी आकर्षक प्रतीत होती हैं, कि इनके रानी होने में किसी भी प्रकार का संदेह नहीं होता।

जगत परिवर्तन-शील है। और यह है परिवर्तन-शील जगत के एक खण्ड पर बसने वाले मानव की कहानी। जो हमारी ही कहानी है, परन्तु आश्चर्य है, कि हम स्वयं भी इसे आश्चर्य चकित होकर सुनते हैं।

खस प्रदेश के निवासी

खस प्रदेश वास्तव में उत्तर प्रदेश के उत्तर पश्चिम में स्थित पहाड़ी प्रदेश का ही नाम है। इसमें मंसूरी देहरादून आदि पर्वतों के आस पास का ही क्षेत्र सम्मिलित है। वास्तव में यह प्रदेश बड़ा ही रमणीक तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का भण्डार है। जिन लोगों ने कभी इस प्रदेश की यात्रा की है, वे अवश्य ही इस के सौन्दर्य का गुणगान किये बिना नहीं रह सकते। ऊंची ऊंची पर्वत मालायें, बर्फानी झरने, अनेक प्रकार के फलदार वृक्ष, हरी भरी ऊँची नीची भूमि, आकर्षक दृश्य तथा शीतल जलवायु मन को इस प्रकार मोह लेता है, कि फिर वहां से लौटने को जी नहीं चाहता।

खस प्रदेश में अधिक जन-संख्या खस जाति अथवा पहाड़ी राजपूतों की ही पाई जाती है, वैसे ब्राह्मण तथा कोल्टेड्डम (कोहली वंश के लोगों की एक अछूत जाति) आदि लोग भी यहां पाये जाते हैं। कोल्टेड्डम अधिकतर खस लोगों के ही सेवक होते हैं, तथा उनकी सेवा करने के अतिरिक्त और कोई अन्य जीविका उन्हें प्राप्त ही नहीं हो पाती। पुरातन काल से ही ये लोग खस लोगों की सेवा का व्यवसाय अपनाये हुए हैं। यही कारण है, कि यह व्यवसाय एक प्रकार से इनका मौरोसी धन्धा बन चुका है। एक ही मालिक के यहां बहुत से दास-लोगों ने अनेक पीढ़ियां बिता दी हैं। तथा आज भी उसी प्रकार अपने स्वामियों की सेवा करते चले आ रहे हैं।

पर आज भारत स्वतन्त्र हो चुका है, और हमारी सरकार इनके इस घृणित पेशे को छुडा कर इन्हें उन्नत करने की ओर ध्यान दे रही है। अनेक स्थानों पर इन लोगों को शिक्षित करने के लिए मुफ़्त पाठशालायें खोल दी गई हैं। ताकि शिक्षित हो कर ये लोग भी अपनी दासता के बन्धनों को काट सकें, जोकि भारत के प्रत्येक नागरिक को अधिकार है।

इस क्षेत्र के पर्वत काफ़ी विशाल तथा ऊँचे आकार के हैं। कोई भी शिखर ८००० फ़ुट से अधिक नीचा नहीं। जाड़े के दिनों में प्राय: बर्फ़ भी पड़ जाती है। ऊँची चोटियों पर बर्फ़ की काफ़ी अधिकता हो जाती है। कहते हैं, बर्फ़ानी क्षेत्रों में रहने से स्वास्थ्य बड़ा संतोष-जनक रहता है, और यदि जाड़ों के दिनों में भी इन्हीं क्षेत्रों में रह कर यहां के प्रचण्ड शीत को सहन कर लिया जाए, तो मुख का रंग साफ़ तथा लाल हो जाता है। यह बात प्राय: सत्य है, क्योंकि यहां के लोगों के मुख, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, सेब की तरह लाल होते हैं।

कालसी इस क्षेत्र का एक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इस स्थान पर अशोक के युग के अनेक शिला-लेख प्राप्त होते हैं, जिन्हें यहां के लोग 'चतर-साला' कहते हैं। 'चतर-साला' असल 'चित्रशाला' शब्द का ही विकृत रूप है। 'जमना' 'अमला' तथा 'टौंस' आदि नदियां इन्हीं पर्वतों से निकलती हैं। तथा इसी स्थान पर एक दूसरे से आकर मिल जाती हैं। जौनसार इस क्षेत्र की बड़ी प्रसिद्ध जगह है, जिसकी यात्रा को देश के अनेक प्रदेशों से यात्री ग्रीष्म की ऋतु में आते हैं।

यहां की अधिकतर जनता खेती के सहारे ही अपनी जीविका चलाती है। किन्तु पर्वतों पर खेती करना भी बड़ी जटिल समस्या है। प्रत्येक स्थान पर तो खेती हो नहीं पाती, केवल पर्वतों को काट कर एक सा कर के ही धरती खेती योग्य बनाई गई है। ये खेत छोटे छोटे होते हैं तथा सीढ़ियों की तरह पहाड़ी पर नीचे को उतरते चले जाते हैं। जिस स्थान पर पथरीली चट्टानें आ जायें, वहां खेत नहीं बनाये जाते, और न ही अधिक ऊँची चोटियों पर बनाये जाते हैं।

यहां रहने वाले लगभग सभी लोग, चाहे वे खस हों, अथवा ब्राह्मण या कोल्टे-डूम; मांस खाने में विशेष रुचि रखते हैं। स्त्रियों को तम्बाकू या सिगरेट पीने की अधिक लत होती है। यह लत इन के समाज में कोई बुरी बात नहीं समझी जाती।

खस प्रदेश के लोगों के समाज में अनेक विचित्र रीति-रिवाज प्रचलित हैं। विवाह की रीति भी बड़ी अनोखी है। इसमें जाति-पाति का कोई भी भेद-भाव नहीं समझा जाता। ब्राह्मण तथा राजपूतों में भी परस्पर विवाह सम्बन्ध हो जाते हैं। एक स्त्री एक ही समय में अनेक पुरुषों की पत्नी बन कर रहती है। भाइयों में यदि एक भ्राता का विवाह हो जाये, तो अन्य भ्राताओं का विवाह नहीं होता। एक की स्त्री ही अन्य भ्राताओं की भी स्त्री समझी जाती है। इस प्रकार के पुरुष तथा नारी के सम्बन्धों को इन लोगों में बुरा नहीं समझा जाता बल्कि यह लोग इसी को शुभ मानते हैं। इन का विश्वास है कि यदि पाँच भ्राता हों और पाँचों ही यदि अपना अलग अलग विवाह कर लें तो घर का नाश हो जाये। क्योंकि पहाड़ों पर खेती के अतिरिक्त और कोई जीविका का साधन नहीं मिलता परन्तु खेती के लिये पर्याप्त धरती का अभाव है। यदि थोड़ी सी जमीन के स्वामी सभी भ्राता अपना अलग अलग विवाह कर लें, तो अधिक गृहस्थियों का भार आ पड़ता है, और सभी को अपनी अपनी अलग अलग व्यवस्था करनी पड़ती है। स्त्रियों की परस्पर कलह से भी भाई भाई आपस में शत्रु बन जाते हैं। और इस वैर-भाव का फल यह होता है, कि अन्त में धरती के भी बँटवारे हो जाते हैं, और इस प्रकार किसी को अपना जीवन व्यतीत करने के लिए आवश्यकतानुसार कृषि योग्य भूमि नहीं मिल पाती। इस के अतिरिक्त एक कारण और भी है कि पहाड़ी क्षेत्रों में खेती करने के लिये विशेष परिश्रम तथा सहयोग की आवश्यकता होती है। और प्रायः विवाह कर लेने पर देखा गया है, कि घर की स्त्रियों से नई दुलहन की नहीं पटती, जिससे अपने पति के साथ वह अलग हो कर अपनी एक नई गृहस्थी बना लेती है। इस प्रकार एक गृहस्थी के खण्ड होने पर परिवार के बल का खण्डित हो जाना निश्चित है। एक बात यह भी है कि स्त्री नियत पुरुष के साथ जितनी अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकती है, उतनी वह अनेक पुरुषों के साथ रह कर नहीं कर पाती। बच्चे कम पैदा करने अथवा समाज सुधार हेतु जन-संख्या पर नियंत्रण रखने के दृष्टि-कोण से ही यहाँ के पूर्वजों ने एक घर के सभी पुरुषों के लिये एक ही स्त्री पत्नी रूप में नियत की है। हमारे लिए खस लोगों की यह

रीति वास्तव में विचित्र प्रकार की है। पर ये लोग इसे एक सामाजिक रीति तथा एक शुभ रिवाज समझते है।

खस प्रदेश की नारियाँ शराब पीने में भी संकोच नहीं करती। पर एक विशेष गुण इन में यह होता है, कि यह बड़ी परिश्रम करने वाली होती हैं। पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर काम करती हैं। वृक्षों पर चढ़ जाना, तथा पहाड़ी नदियों को पार कर लेना इन्हें बड़ा सरल सा लगता है।

शिक्षा से तो यहाँ के लोग पूर्ण अनभिज्ञ हैं। यहाँ तक कि गिनना तक नहीं जानते। ये लोग अपनी वस्तुओं तक का हिसाब किताब ठीक से नहीं कर पाते। वैसे शिक्षा के प्रचार के कारण से अब इनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य आ गया है। आशा की जाती है कि भविष्य में इनकी अवस्था काफ़ी सुधर जायेगी।

इस क्षेत्र के लोगों का पहनावा भी बड़ा सरल है। गर्मियों में यहाँ के लोग केवल एक ही लंगोटी पहन कर अपना समय बिता देते हैं, परन्तु जाड़े के दिनों में ऊनी चुस्त पाजामा, लम्बा अंगरखा (यह शब्द अंग-रक्षक शब्द से विकृत हो कर बना है) तथा एक गोल टोपी पहनते हैं। स्त्रियाँ केशों को ढकने के लिए एक काले रंग का रूमाल जिसे यह लोग 'ढुयांटू' कहते हैं, बांधे रहती हैं। इसके अतिरिक्त एक कुर्ती तथा पेटीकोट नुमा घाघरे का उपयोग भी करती हैं। जाड़े की ऋतु में ऊनी सदरी अथवा जाकेट का प्रयोग भी कर लेती हैं। यही इन लोगों का एक साधारण सा पहनावा है।

स्त्रियों को इस देश में आभूषण पहनने का बड़ा चाव होता है। नये नये आभूषणों की प्राप्ति के लिए प्रायः ये लालायित रहती हैं। वैसे ये आभूषण भद्दे से दिखाई देते है, किन्तु यह नारियाँ इसी में प्रसन्न रहती हैं। नाक में एक बड़े आकार की लौंग तथा बुलाक आदि पहनती हैं। कानों में बालियाँ, हाथों में कड़े तथा गले में कण्ठ-चिक आदि अलंकारों का उपयोग करती हैं।

इस प्रदेश के लोग अधिकतर देवी देवताओं में ही अपना विश्वास रखते हैं। पर शिवजी को भी अपना परम-देव मान कर उसकी बड़ी पूजा करते हैं। अपने मान्य देवी देवताओं पर बकरे की बली चढ़ाना इन के यहाँ बड़ा शुभ

माना जाता है जिस बकरे की बलि देनी होती है, उस पर सब से पहले अपने मान्य अथवा देवता का नाम ले कर पानी की छींटें दी जाती हैं। ऐसा करने के पश्चात यदि वह बकरा कांप उठे, तब तो यह समझ लिया जाता है, कि देवी अथवा देवता इस भेंट से प्रसन्न हो उठे हैं, तथा एक ही वार में उसका कार्य समाप्त कर दिया जाता है। अन्यथा न कांपने पर देवी या देवता को रुष्ट जान कर उसे छोड़ दिया जाता है। यह सब कार्य केवल देवी या देवता की वेदी पर ही किए जाते हैं। जितनी श्रद्धा ये लोग इन देवी देवताओं में रखते हैं, उतनी ईश्वर में नहीं रखते। ईश्वर के प्रति इन में श्रद्धा नहीं है। इनके समक्ष तो देवता आदि ही जग को पालने तथा मारने वाले हैं।

इतिहासकारों का विचार है, कि कौरवों तथा पांडवों के समय में खस लोगों का राज्य हिमालय पर्वत पर पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ था। उस समय ये लोग उन्नत माने जाते थे। पर न जाने किन कारणों से ये न केवल अपना राज्य ही नष्ट कर बैठे, अपितु अपनी प्राचीन संस्कृति से भी हाथ धो बैठे।

हरयाली का त्योहार यह लोग बड़े हर्ष-पूर्वक मानते हैं। किसी निश्चित स्थान पर मेले में सम्मिलित होने के लिये दूर दूर से खस लोग आते हैं, देवी अथवा देवता के मन्दिर पर बलियां चढ़ाई जाती हैं। स्त्री, पुरुष साथ साथ गाते बजाते तथा नृत्य आदि करते हैं। हरयाली का त्योहार जिन दिनों होता है, उन दिनों इस क्षेत्र में वर्षा का प्रारम्भ होता है। और फिर मजे की बात तो यह है कि जरा बादल दिखाई दिया, और पानी की धारें छूटने लगीं।

ये लोग अतिथि-सत्कार करने में अपनी बड़ी बड़ाई समझते हैं। यथा-सम्भव अतिथि सेवा में कोई कसर उठा नहीं रखते। जब भी कोई महमान घर पर आता है, तो घर की कन्या अथवा अन्य स्त्री बड़े आदर से अतिथि के हाथ पैर धुलाती है। फिर उसके लिये भोजन तैयार किया जाता है। जब भोजन तैयार हो जाता है। तो अतिथि के हाथ पैर धुला कर उसे भोजन के लिये बिठाया जाता है। जब खाने के लिये सब प्रकार की वस्तु परोसएं दी जाती हैं,

तो उन वस्तुओं में से सभी प्रकार का थोड़ा थोड़ा भोजन निकाल कर पहले घर की स्त्री स्वयं खाती है, इसके पश्चात ही अतिथि को खाने का आदेश दिया जाता है। यह सब इसलिये किया जाता है, कि 'हमने आपके भोजन में आन्तरिक शत्रुता वश कोई विष आदि नहीं मिलाया, यदि हम ने कोई ऐसा नीच कार्य किया हो, तो आप से पहले इसे खा कर हम ही मर जायेंगी।'—धन्य है खस देश के ये निवासी, जिन में अपने अतिथि के लिये इतना अपूर्व प्रेम तथा श्रद्धा होती है। भारत को इन के इस आचरण पर गौरव क्यों न हो? भले ही ये लोग अशिक्षा वश हम से बहुत ज्यादा पिछड़े हुए हैं, किन्तु फिर भी हमें इन पर गर्व है, जिन्हों ने हमारे देश-वासी हो कर भारत की हमारी अतीत संस्कृति को मिटने नहीं दिया। इतिहासकार तथा अन्य महान पुरुषों ने इन लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन आदि का अध्ययन करके हमारे नष्ट हुए अतीत में एक अभिन्न ज्योति जलाने की भरपूर चेष्टा की है।

जाड़ प्रदेश के निवासी

जाड़ प्रदेश भारत के उत्तर में टिहरी गढ़वाल तथा तिब्बत के मध्य में से बहने वाली जाड गंगा का प्रदेश है। ऊंचाई की दृष्टि में यह प्रदेश लगभग ११००० फुट की ऊंचाई पर स्थित है। इसलिये शीत काल में कुछ महीनों के लिये बर्फ भी पड़ जाती है। इस प्रदेश में हर ओर पत्थरीली चट्टानें ही दीख पड़ती हैं। जलवायु भी यहां का शुष्क है। इस लिये मनुष्य का गुजारा बड़ी कठिनाई से हो पाता है। कहीं कहीं ही थोड़ी बहुत भूमि कृषि के योग्य है। अन्यथा सभी जगह पत्थर ही पत्थर दीख पड़ते हैं। मार्ग भी इतने कठोर हैं, कि चलते हुए मारे ठोकरों के पगों का बुरा हाल हो जाता है। क्योंकि राहों में हर ओर पत्थर ही पत्थर पड़े रहते हैं।

इस प्रदेश में वैसे तो राजपूत आदि अनेक जातियों के लोग रहते हैं, परन्तु अधिकता केवल राजपूत, जाड़ तथा कोलियों की ही पाई जाती है। इस प्रदेश में श्रेष्ट जाति केवल राजपूतों की ही समझी जाती है। यह लोग अन्य किसी भी जाति के लोगों के हाथ का बना भोजन नहीं खाते, और न ही अपने विवाह आदि सम्बन्ध कहीं किसी दूसरी जाति में करते हैं। राजपूतों को ही इस प्रदेश में अधिक सामाजिक आदर प्राप्त होता हैं। कोली लोग अधिकतर कपड़ा बुनने का कार्य करते हैं।

किन्तु फिर भी जाड़ लोगों का जो महत्त्व इस प्रदेश में है, वह किसी अन्य जाति का नहीं है। कहते हैं कि पहले जाड़ लोग तिब्बत के निवासी थे। किन्तु उस से भी पहले यह लोग भारत के ही किसी खण्ड के रहने वाले थे। परिस्थिति वश इन्हें अपनी जन्म भूमि छोड़नी पड़ी, और ये लोग घूमते घूमते अपने जीवन की रक्षा के लिये, तिब्बत राज्य में जा बसे। पर एक समय ऐसा आया, कि तिब्बतियों ने इन पर बड़े बड़े अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये।

विवश हो कर इन्हें उस देश को छोड़ कर फिर भारतीय सीमा में लौट आना पड़ा, तथा ये लोग टिहरी गढ़वाल की सीमा के साथ साथ घाटियों में बस गये। इसीलिये यहां से निकलने वाली नदी जो कि गंगा में आ कर मिल जाती है। जाड़ गंगा के नाम से प्रसिद्ध है।

जाड़ लोगों का अपना कोई घर नहीं होता। घरों की अपेक्षा यह लोग पहाड़ी गुफाओं अथवा मद्दे तथा अस्थायी प्रकार के झोंपड़ों में ही रहना अधिक पसन्द करते हैं। वास्तव में ये लोग खानाबदोश हैं। कभी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते। वर्ष के लगभग आठ महीने ये लोग इस प्रदेश से बाहर ही बिताते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय तो व्यापार है परन्तु इन में से बहुत से लोग ग़रीबी वश भीख भी मांगते हैं। भेड़ बकरियों के सहारे भी यह लोग अपने जीवन की गाड़ी चलाते हैं। यही इन लोगों का एक प्रकार से श्रेष्ठ धन होता है।

जाड़ लोगों में जो लोग भीख मांगने का काम करते हैं। उन्हे "भैर जाड़" कहते हैं। 'भैर जाड़ों' के पास केवल धन रूप में एक आध गाय ही होती है। जिसे जाड़ी भाषा में 'जोई' कहते हैं। इस से अधिक उन के पास कुछ नहीं होता। भीख मांगते हुए ये लोग दूर दूर तक अनेक प्रदेशों में निकल जाते हैं। और ग्रीष्म ऋतु होने पर इसी क्रम से पुनः जन्म-भूमि को लौट आते हैं। यही इन भैर जाड़ों की जीवन चर्या है। इसी प्रकार ये लोग अपना तथा अपने बाल बच्चों का पेट भरते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि ये लोग परिश्रम से जी चुराते हैं, अपितु ये लोग तो इतना घोर परिश्रम करते हैं। कि कहा नहीं जा सकता। मेहनत करने में इनके घर की स्त्रियां भी अपना खून पसीना एक कर देती हैं। किन्तु फिर भी इन्हें भर पेट रोटी नहीं मिलती इसीलिये वर्ष के कुछ महीनों में जब चारों ओर बर्फ़ की सफ़ेद चादर बिछ जाती है और पेट की भड़कती हुई आग बुझाने के लिये इन्हें कोई साधन दिखाई नहीं पड़ता, तो ये लोग भीख मांगने पर विवश हो जाते हैं। और भीख मांगते हुए मैदानी क्षेत्रों की ओर चले आते हैं। जाड़ा समाप्त

होते ही यह लोग फिर अपने देश को लौट जाते हैं। यही इन भैंर जाड़ों के जीवन का विशेष क्रम है।

भैंर जाड़ों के अतिरिक्त शेष सभी जाड़ लोग व्यापार आदि का कार्य करते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में ये लोग तिब्बत की ओर चले जाते हैं। यहाँ से ये लोग ऊन, नमक, घोड़े, खच्चरें, चाय आदि खरीद लेते हैं, तथा जाड प्रदेश में चले आते हैं। यह खेती करने योग्य ऋतु होती है। ऐसे समय में ये लोग यहीं टिक कर खेती करते हैं, और जब फ़सल समाप्त होती है, तभी एक दम शीत-ऋतु का प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे समय में यह लोग फिर अपने घर-बार को छोड़ कर मैदानी क्षेत्रों की ओर चले आते हैं। यहाँ पहुँच कर ये लोग धीरे धीरे तिब्बत से खरीद कर लाये हुये माल को हरिद्वार, देहरादून आदि नगरों की मण्डियों में बेच देते हैं। जब जाड़ा कुछ कम होने लगता है, तो ये लोग फिर अगले वर्ष के लिये माल खरीद लाने को तिब्बत की मण्डियों के लिये कूच कर देते हैं, और फिर पहले की ही तरह खेती करते हुए अपने व्यापार के लिये मैदानी क्षेत्रों में चले आते हैं। इसी प्रकार वर्ष पर वर्ष बिताते हुये ये लोग अपना जीवन पूरा करते हैं। मैदानी मण्डियों से भी ये लोग तिब्बत में बेचने के लिये गुड़, कपड़ा, तथा अनाज आदि ले जाते हैं।

व्यापारी हो कर भी यह लोग निर्धनता की चक्की में पिस रहे हैं। हजारों रुपयों का व्यापार करते हुए भी, ये लोग अपने भूखे पेट के लिये मन-चाही रोटी प्राप्त नहीं कर पाते। कारण यह है कि इन लोगों का खर्च इतना ज्यादा होता है, जिसे सहन करना हर आदमी का काम नहीं। जो कुछ भी लाभ इन्हें होता है, उस से केवल वर्ष भर के लिये रोटी, कपड़ा, चारा, तथा जीवन की कुछ अन्य आवश्यकताएँ ही पूरी हो पाती हैं। बचाने के लिये इन के पास कुछ नहीं होता। जितनी रक़म इन लोगों के पास व्यापार में लगी होती है, चाहे कितनी भी कड़ी आपत्ति क्यों न आ पड़े, पर ये लोग उसे कभी खर्च नहीं करते। उसी के सहारे इन का जीवन चलता है यदि ये उसे अन्य आवश्यकताओं पर खर्च कर दें तो निस्संदेह भूखे मर जायें।

ये लोग अधिकतर सामान आदि ढोने का कार्य अपनी भेड़ बकरीयों से ही लेते हैं। भेड़ बकरियों की पीठों पर छोटे छोटे मजबूत थैलों में सामान बांध कर लटका देते हैं। हां, खच्चरों पर दो तीन मन तक बोझा लाद दिया जाता है। इसी प्रकार ये लोग अपने बाल बच्चों के सहित एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते रहते हैं। जब शाम हो जाती है, तो राह के निकट पड़ने वाले किसी गांव के पास डेरे डाल कर विश्राम करते हैं, और प्रातः काल होने पर भोजन आदि खा पी कर फिर अपनी यात्रा पर चल पड़ते हैं।

जाड़ लोग अधिकतर ऊनी कपड़ों का ही प्रयोग करते हैं, परन्तु मेले दशहरों के अवसर पर यह लोग, मखमल तथा रेशम के भड़कीले वस्त्रों का भी उपयोग करते हैं। ऐसे अवसरों पर इन की शोभा देखने योग्य होती है। सुन्दर तथा मनोहर वस्त्रों से अलंकृत होकर जब ये लोग अपनी सजाई हुई दुकानों पर बैठते हैं, तो मेलों की शोभा निखर उठती है। उस समय ये लोग काफ़ी धनवान व्यापारी से प्रतीत होते हैं।

वास्तव में जाड़ लोगों को अपना जीवन बड़े कष्ट से बिताना पड़ता है, अन्न के दाने तो इन्हें इतने प्राप्त हो नहीं पाते, जिन से भली प्रकार गुजारा हो सके, इसलिये जिन्दा रहने के लिये इन्हें जी तोड़ परिश्रम करना पड़ता है। यही कारण है, कि व्यापार इन के जीवन का एक आवश्यक आधार हो गया है।

जाड़ लोगों का भोजन भी बड़ा सरल है। दाल चावल खाने में इन्हें बड़ी रुचि होती है, पर फिर भी ये लोग अधिकतर मांस ही खाते हैं। कारण यह है कि उसके बिना इनके भोजन की पूर्ति नहीं हो पाती। ठण्डा प्रदेश होने के कारण ये लोग मदिरा पान भी करते हैं। स्त्रियां भी इसका पान करने में संकोच नहीं करतीं, अपितु बड़े चाव से इसका सेवन करती हैं। मदिरा को जाड़ी भाषा में "सूर" कहते हैं। चाय पीने का भी इन्हें बड़ा शौक होता है। पर इनका चाय बनाने का ढंग बड़ा अनोखा है। प्रातः

काल होते ही चाय बनाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी जाती है। चाय का पानी उबाल कर उसमें कई गरम तासीर के वृक्षों की छालें तथा चाय पादि छोड़ देते हैं। जब पानी खूब औट कर चाय तथा अन्य डाले हुये पदार्थों का रस निचोड़ लेता है, तब उसे एक अलग बर्तन में छान लिया जाता है। इसके बाद उस में मक्खन तथा नमक छोड़ कर लस्सी की भांति उसे बिलोया जाता है। ऐसा होने पर ही उसे पीने के योग्य समझा जाता है। सारा दिन यह लोग चाय ही पीते रहते हैं, चूल्हे की आग कभी ठण्डी नहीं होती। हर समय देगची चढ़ी ही दीख पड़ती है।

जाड़ लोग ठण्डे प्रदेश के वासी होने के कारण सुन्दर, स्वस्थ, गौर-वर्ण तथा कुछ छोटे आकार के होते हैं। स्त्रियों की सुन्दरता बड़ी अपूर्व है। अपनी साधारण वेश भूषा में भी यह नारियां विशेष आकर्षक प्रतीत होती हैं। राहों में चलते हुये तथा खेतों अथवा वनों में काम करते हुए जब ये अपने बारीक मधुर कण्ठ से गीत गा उठती हैं तो लोग सुनते ही रह जाते हैं।

जाड़ लोगों की स्त्रियां इतनी परिश्रमी होती हैं, कि सूर्य निकलने से पहले ही उठ कर घर के काम काज में लग जाती हैं। अधिक देर तक सोना इनका स्वभाव नहीं है। यदि ये सोते ही रहें तो शायद इन्हें भोजन का भी संशय पड़ जाय। इसीलिये ये लोग आलस्य को दूर रखते हैं। चाहे कुछ हो अंधेरे ही में उठ कर काम में लग जाना इनका नित्यकर्म है।

यहां की स्त्रियां, व्यर्थ की बातों में रुचि नहीं रखतीं। घर के कार्य से अवकाश पा कर भी वे कुछ न कुछ कार्य अवश्य ही करती रहती हैं। जैसे ऊन कातना, ऊन साफ़ करना तथा उसे बुनना आदि। इन कामों को यह इतनी सफ़ाई से करती हैं, कि अच्छे अच्छे कारीगर भी चकित हो जाते हैं। स्त्रियां ही नहीं अपितु इन के बच्चे भी इन कामों में पूर्ण रूप सिद्ध-हस्त होते हैं। मैदानी प्रदेशों के बच्चों की तरह वह गली कूचों में गुल्ली-डण्डा बजाते नहीं फिरते, बल्कि मां बाप के साथ उन के कार्यों में सामर्थ्य अनुसार पूरा हाथ बटाते हैं। यही उनका खेल है और यही उनका मनोरंजन।

ये लोग कम्बल, पश्मीने की चादर, वरमोल तथा अन्य कई ऊनी वस्तुएं बनाते हैं। पहाड़ी लोगों को इनकी बड़ी आवश्यकता होती है, और इसलिये इन्हें इन चीजों को बेचने के लिये ग्राहकों की खोज नहीं करनी पड़ती, बल्कि ग्राहक स्वय ही इनके डेरों पर चले आते हैं।

कम्बल आदि बेचने के लिये ये लोग दूसरे देशों में भी जाते हैं। दूर २ के देशों से सम्बन्ध रहने के कारण इनकी भाषा भी कई प्रकार की हो जाती है, अथवा ये कई प्रकार की भाषायें बोलना सीख जाते हैं। पर इनकी मुख्य भाषाएँ तिब्बती, जाड़ी, तथा हिन्दुस्तानी ही हैं। इन तीन भाषाओं को बोलने में ये लोग बड़े दक्ष होते है। इन तीनों भाषाओं को ये लोग शुद्ध रूप से बोलते हैं। जाड़ लोगों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अशिक्षित जाति ऐसी नहीं दीख पड़ती, जो कि इतनी भाषाओं को जानती हो।

शिक्षा प्राप्त करना इन लोगों के लिये असम्भव सा है। क्योंकि ये लोग कभी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते इनके चलते फिरते जीवन को शिक्षित करना बड़ा कठिन कार्य है। पर हमारी सरकार ने किसी भी प्रकार इन लोगों को शिक्षित करने का निश्चय किया है। पर यह अभी कहा नहीं जा सकता, कि इसमें कितनी सफलता प्राप्त होगी। यदि ये लोग शिक्षित हो गये तो निकट भविष्य में ये बहुत अच्छे व्यापारी बन सकेंगे। परन्तु आने वाला युग इनके लिए कौनसी नवीन देन लाता है, यह तो समय ही बतायेगा।

जाड़ लोगों का पहनावा भी इन के कठोर जीवन की भांति ही बड़ा कठोर होता है। ऊनी कपड़े के बने हुए लम्बे लम्बे चोगे पहनने का रिवाज स्त्री तथा पुरुषों में बहुत है। परदे का रिवाज स्त्रियों में जरा भी देखने को नहीं मिलता। हां लज्जा के वशीभूत यहां की स्त्रियां शीश को ढकने के लिये एक चादर अवश्य लपेट लेती हैं। पांव में ऊन के जूते पहनने का इधर बड़ा चलन है। चमड़े के जूते पहनने को इन का जी नहीं चाहता। जिन लोगों की हालत जरा पतली होती है, वे बेचारे, पटसन के ही जूते बना कर पहन लेते हैं।

आज के उन्नत-युग के प्रभाव की छापें इन के जीवन पर भी हैं, क्योंकि बहुत से जाड़-पुरुष अब कोट पाजामा, तथा स्त्रियां सलवार कमीज का उपयोग

करने लगी हैं। कढ़ाई दार कपड़े पहनने का स्त्रियों को बड़ा चाव होता है। सोने चांदी के आभूषणों का भी इन्हें काफ़ी शौक होता है। साज शृंगार इन का बड़ा ही सरल है। स्त्रियों में प्रायः एक से अधिक वेणियाँ गूथने की रीति प्रचलित है। सभी औरतों में चाहे वे निर्धन हों अथवा धनवती, बाल सँवारते समय चोटियों के साथ कौड़ी लगाने की प्रथा है। यह सुहाग की एक आवश्यक निशानी समझी जाती है। इन स्त्रियों का विश्वास है, कि इसे लगाये बिना, नारी का शृंगार सदा अधूरा रहता है। वास्तव में यहाँ की स्त्रियाँ अशिक्षित तथा बड़े पुराने विचारों की और असभ्य होती हैं, किन्तु इन के अंग प्रत्यंग से प्राकृतिक सौन्दर्य टपकता है।

जाड़ जाति की नारियाँ शराब तथा तम्बाकू पीने में तनिक भी संकोच नहीं करतीं। बस यही इन में एक चरित्र की त्रुटि है। पर यदि शिक्षा का तेज इन तक पहुँचाया जाये, तो हो सकता है, कि ये अपने जीवन को सुधारने के साथ साथ, चरित्र की इस त्रुटि को निकाल कर आने वाले भारतीय वीरों की सच्ची जननियाँ कहला सकें, और भारत देश के मस्तक को जगत के समक्ष ऊँचा कर सकें।

भोट प्रदेश के निवासी

भोट प्रदेश भारत की उत्तरी सीमा पर स्थित वह हिम-खण्ड है, जहाँ तिब्बत की दक्षिणी सीमा भारत की उत्तरी सीमा का स्पर्श करती है। वर्ष के अधिक मास यहाँ बर्फ के तूफ़ानों में ही बीतते हैं। घोर वनों तथा पथरीली चट्टानों से ढका हुआ यह प्रदेश उजाड़ तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु फिर भी इसके सम्बन्ध में यह कह देना अनुचित न होगा, कि यहाँ मनुष्य के बसने हेतु कुछ भी प्राप्त नहीं है। परन्तु यह देख कर आश्चर्य होता है, कि यहाँ भी मानव आबाद है। किसी ऐसे प्रदेश में, जहाँ पेट भरने के लिये रोटी का टुकड़ा भी नसीब न हो, वहाँ भी मानव के वास को देख कर आश्चर्य क्यों न हो? न जाने किसकी प्रतीक्षा में वह मानव वहाँ बसा हुआ है? ऐसी कौन सी आशा है, जिसके पीछे वह उस भूमि का परित्याग नहीं कर सकता?

जिस भोट प्रदेश के लोगों की कहानी हम कहने चले हैं, उनका ठीक स्थिति कुमाऊँ प्रदेश के उत्तरी भाग में है। वास्तविक रूप में यही प्रदेश भोट प्रदेश समझना चाहिये।

इस प्रदेश में रहने वाले लोग भोटिया कहलाते हैं। इनकी जीविका का एक मात्र साधन इनकी भेड़ें हैं। वैसे तो यह लोग गाँव बना कर रहते हैं। परन्तु वास्तव में इनका कोई घर नहीं होता। आज यहाँ, तो कल वहाँ, यही इनके जीवन का एक क्रम सा है। ऊन, सुहागा, हींग, जीरा, तथा भेड़ों का व्यापार कर के ही ये लोग अपनी रोटी कमाते हैं। इस सम्पूर्ण प्रदेश में कोई भी आदमी धनी दिखाई नहीं पड़ता।

वर्ष के जिन महीनों में यहाँ बर्फ़ के तूफ़ान ठाठें मारा करते हैं उन दिनों ये लोग वहाँ नहीं रहते। अपितु अपनी भेड़ बकरियों सहित

नीचे स्थानों की ओर चले आते हैं। तथा वहीं अपना व्यापार चलाते हैं। परन्तु ग्रीष्म-ऋतु में जब पहाड़ों की बर्फ़ पिघल कर बह जाती है, तो ये लोग अपने देश को ही पुनः लौट जाते हैं। कुछ लोग अपने परिवारों को यहां छोड़ कर तिब्बत की मण्डियों में चले जाते हैं, तथा निचले देशों से खरीद कर लाया हुआ माल वहां बेच कर अन्य आवश्यक वस्तुएँ खरीद लेते हैं और फिर अपने देश को लौट आते हैं। गर्मियों के दिन बिताने के पश्चात बर्फ़ का आरम्भ होते ही ये लोग फिर निचले प्रदेशों में उतर आते हैं, और व्यापार आदि चलाते हैं। वैसे इन भोटिया और जाड़ लोगों के रहन-सहन तथा कारोबार में कोई विशेष अन्तर नहीं, परन्तु इनका सामाजिक जीवन उन लोगों से बहुत भिन्न है।

बर्फ़ानी प्रदेशों के निवासी होने के कारण भोटिया लोगों का शारीरिक वर्ण अत्यन्त श्वेत होता है। परन्तु इनके उस श्वेत रंग पर मैल की अनेक तहें जमी हुई दिखाई पड़ती हैं। कारण यह है, कि ये लोग अधिक नहाते धोते नहीं। क्या हुआ जो वर्ष में किसी एक दिन नहाने की भूल कर डाली। वास्तव में इनका भी कोई दोष नहीं। ये लोग नहाने धोने को एक बहुत बड़ा बोझ समझते हैं। और इसी लिये उस से दूर रहने की चेष्टा करते हैं।

इन की आकृति अधिकतर तिब्बती लोगों से मिलती जुलती है। पहनावा वैसे तो भारतीय ढंग का है, परन्तु फिर भी उस पर तिब्बती वेश भूषा का रंग चढ़ा हुआ दीख पड़ता है। पुरुष लम्बे लम्बे घुटनों से नीचे तक चोगे पहनते हैं। सिर पर एक तिब्बती ढंग की टोपी, अथवा एक अनोखे प्रकार की पगड़ी पहनने का रिवाज है। स्त्रियों की वेश भूषा भी कुछ कुछ इसी प्रकार की है। परन्तु सिर को ढकने के लिये वह चादर का उपयोग करती हैं। बहुत सी स्त्रियां केशों को ढकने के लिये सिर पर रूमाल भी बांध लेती हैं। कानों में बालियां, हाथों में कंकण तथा गले में कण्ठी-माला पहनने का उन्हें बड़ा चाव होता है।

बहुत से लोगों का विचार है, कि ये लोग अयोध्या नरेश भगवान श्री राम के वंशज हैं। इस से सम्बन्धित अनेक लोक कथायें भी यहां प्रचलित हैं। पर इतना अवश्य है, कि आज भी इन के समाज में मिलने वाली सामाजिक प्रथायें इस बात का प्रमाण हैं, कि ये लोग वास्तव में रघुवंश के ही अवशेष हैं।

भोट प्रदेश के सभी निवासी अधिकतर क्षत्रिय कुल से ही सम्बन्ध रखते हैं। तथा अब अपने आप को गंगा के मैदान के प्राचीन निवासी ही बताते हैं। पर समझ में नहीं आता कि कुमाऊँ प्रदेश के हिम शिखरों पर ये लोग कैसे जा बसे, परन्तु परिस्थितियों के अनुसार कोई भी कार्य कठिन नहीं जो पृथ्वी के एक सिरे पर बसे मानव को उजाड़ कर उसके दूसरे सिरे पर पटक देती हैं।

इन लोगों की विवाह आदि की रीतियां भी बड़े अनोखे प्रकार की हैं। विवाह करने के लिये लड़के तथा लड़की पर किसी प्रकार की कोई पाबन्दी नहीं लगाई जाती। अपितु इस विषय में उन्हें पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। अपनी इच्छा अनुसार ही लड़का तथा लड़की एक दूसरे को पसन्द करने के पश्चात विवाह करने का अधिकार रखते हैं। जिसमें माता पिता को किसी तरह भी इनकार नहीं हो सकता। परन्तु फिर भी उनकी अनुमति प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता है। जब लड़का लड़की परस्पर एक दूसरे को पसन्द कर लेते हैं। तथा परस्पर विवाह द्वारा एक सूत्र में बन्ध जाने को तैयार हो जाते हैं, तब लड़का अपने किसी मित्र या सेवक के द्वारा कुछ रुपये एक रूमाल में बांध कर लड़की के माता पिता के पास भिजवाता है। तब लड़की के मां बाप इस विषय पर विचार करते हैं कि जो वर लड़की ने चुना है, वह उसके योग्य है अथवा अयोग्य। क्योंकि कई बार संतान अनुभव के अभाव में परस्पर निर्वाचन में धोखा भी तो खा सकती है। वैसे देखा गया है, कि मां बाप प्रायः अपनी संतानों के इस निर्वाचन में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करते तथा उन्हें विवाह करने की अनुमति दे ही डालते हैं।

योग्य वर होने पर लड़की के माता पिता वर को विवाह की स्वीकृति भिजवा देते हैं। और जो भी शुभ तिथि उन्हों ने इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये निश्चित कर के कहला भेजी है, उस तिथि को लड़का अपने मित्र तथा मिलने वालों के सहित लड़की के घर आता है। बिना किसी रीति के ही लड़की को डोली में बिठा कर ले जाता है। इस अवसर पर जब लड़का, लड़की को ले जाने लगता है, तो लड़की के पक्ष वाले उसका रास्ता रोक कर खड़े हो जाते हैं। इस स्थान पर एक बनावटी युद्ध होता है। जिसमें कन्या पक्ष के लोगों को हारना पड़ता है। और लड़का लड़की को ले जाता है। घर पहुँचने के आठ दस दिन पश्चात वर पक्ष की ओर से एक सेवक को कन्या के घर यह कहला कर भेजा जाता है, कि वह उसके पिता को तसल्ली दे, तथा उससे कहे, कि "जो ईश्वर की इच्छा थी, वह तो हो रहा, अब मलाल कैसा, कन्या फिर भी तुम्हारी ही पुत्री है, और जब वर ने उसका अपहरण करके उसे अपनी पत्नी बना लिया है, तो वह भी एक प्रकार से आपका अब पुत्र ही है। इस लिये बीती बातों को भूल कर अब उन्हें आशीर्वाद देने चलिये।" इस रीति से पुराने जमाने के सामाजिक इतिहास पर कितना प्रकाश पड़ता है।

इसके पश्चात लड़के की ओर से भेजे गये प्रार्थना संदेश के प्राप्त करने पर लड़की के माता पिता, सगे-सम्बन्धी, मित्र, सहेलियां, भाई बहन सब एकत्रित हो कर लड़के के घर पहुँचते हैं। उनके पहुँचते ही रीति-अनुसार विवाह सम्पन्न किया जाता है। लड़की पक्ष की ओर से आये हुए, सभी सगे सम्बन्धी, वर तथा कन्या, दोनों को आशिवाद देते हैं। प्रीति-भोज दिये जाते हैं। और यह क्रम महीनों तक चलता है। गाँव का प्रत्येक आदमी हर रोज अपनी ओर से अलग अलग भोज देता है। जी भर के मदिरा के प्याले उड़ाये जाते हैं। नाच रंग, तथा बाजे गाजे की सभाएँ गरम रहती हैं। और यह अनुमान लगाना बड़ा कठिन हो जाता है कि वास्तव में विवाह किस के घर हो रहा है। जब महीनों तक चलने वाली दावतें समाप्त हो जाती हैं, तो लड़का अपनी ओर से अपनी सास को कुछ नक़द रुपया देकर लड़की पक्ष के लोगों को

विदा करता है। यह रुपया जो लड़की की माँ को दिया जाता है, इसे माता के दूध का मूल्य समझ कर ही दिया जाता है।

मृत्यु आदि संस्कार भी इन लोगों के बड़े सरल हैं। मृतक जनों के श्राद्ध आदि कर्म करने की रीति सरल होने के साथ साथ बड़ी अनोखी भी है। श्राद्ध के दिनों में ये लोग अधिक झंझट के कार्यों में नहीं पड़ते, अपितु जिस तिथि को भी मृतक का दाह संस्कार किया गया हो, उसी तिथि को किसी तालाब या झरने के किनारे पर जाकर ये लोग एक पौधा बो देते हैं तथा उसमें दस दिन तक प्रति दिन जा कर पानी दिया करते हैं।

भोट लोगों में भगवान शिव तथा भगवान शेष नाग की पूजा का बहुत प्रचार है। समस्त शुभ अवसरों पर इन ही की पूजा करना ये लोग अपना धर्म समझते हैं। कोई नियत पाठ तथा शास्त्रों के श्लोक आदि तो इन लोगों को आते नहीं, परन्तु फिर भी अपने मतानुसार, धूप, दीप, तथा पुष्पादि से ये श्रद्धा पूर्वक उनकी पूजा करते हैं। तिब्बत, जो कि एक प्रकार से बौद्ध धर्म का केन्द्र समझा जाता है, इन लोगों के अत्यन्त समीप होने पर भी अपना धार्मिक प्रभाव इन लोगों के जीवन पर नहीं डाल सका। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये लोग अपने धर्म में कितनी दृढ़ श्रद्धा रखते हैं, तथा किसी मूल्य पर भी उसका परित्याग करना नहीं चाहते।

इन के चरित्र की विशेष बात यह है कि ये लोग दूसरे के धन को सदा मिट्टी के समान समझते हैं। यहां तक कि इस प्रदेश में लोगों को कभी मकानों पर ताले लगाते नहीं देखा गया। और अधिक लोग तो इस प्रदेश में ऐसे मिलेंगे जो ताले के नाम, तथा उपयोग आदि से अभी तक अनभिज्ञ हैं। कोई चीज, चाहे वह कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो, और वह चाहे कहीं भी क्यों न पड़ी हो, कोई आदमी उसे हाथ तक न लगायेगा। वैसे भी ये लोग अधिकतर कपड़े के बने हुये तम्बुओं में रहते हैं। जहां हर प्रकार की चीजें खुली ही पड़ी रहती हैं, पर कोई किसी की चीज को हाथ तक नहीं लगाता।

भोट लोगों के प्रत्येक ग्राम में प्राय: चौपालें भी पाई जाती हैं, जिन्हें ये लोग अपनी भोटिया भाषा में 'रॉग वाग कुड़ी' कहते हैं। इस 'रॉग वाग कुड़ी' का इन भोटिया लोगों के जीवन में एक बहुत बड़ा स्थान है। इसके बिना इनका सारा जीवन बिल्कुल शून्य सा ही प्रतीत होता है। संध्या समय गांव भर के युवक तथा युवतियां यहां एकत्रित होते हैं, तथा उनके बीच किसी भी प्रकार की शर्म या झिझक नहीं पाई जाती। कुंआरी लड़कियां तथा लड़के अपने विवाह आदि के लिये अपने जीवन साथियों का चुनाव स्वयं ही इस 'रॉग वाग कुड़ी' के मिलन समय कर लेते हैं।

'रॉग वाग कुड़ी' एक प्रकार से इन भोट लोगों के मनोरंजन का भी एक मुख्य स्थान है। संध्या समय एक ओर आग जलाकर रख दी जाती है, तथा दूसरी ओर सभी लड़के तथा लड़कियां पास पास ही एक साथ मिल कर बैठ जाते हैं। फिर एक लड़का तथा एक लड़की उठती है, तथा ढोलक की ताल पड़ते ही उनका नृत्य प्रारम्भ होता है। इसी प्रकार बारी बारी एक एक जोड़ा उठ कर नृत्य करता है। इस समय मदिरा तथा तम्बाकू का जी भर कर पान किया जाता है। यह इनका दैनिक क्रम है, जिसे ये लोग 'रॉग वाग कुड़ी' के नियत स्थान पर प्रति दिन प्रस्तुत करते हैं।

जब कोई युवक-महमान इनके यहां आता है, तो उसे भी 'रॉग वाग कुड़ी' में ही ठहराया जाना शुभ समझा जाता है। अन्यथा महमान को यदि कहीं और ठहरा दिया जाये, तो इसमें वह अपना अपमान समझता है। परिवार के बीच अपने महमानों को ठहराना यह लोग ठीक नहीं विचारते।

'तुबेरा', 'बाज्यू' तथा 'तिमली' यह तीन प्रकार के गायन ही इन लोगों के बीच प्रचलित हैं। तुबेरा राग उत्तर प्रदेश के ग्रामों में सुनाई पड़ने वाले 'रसिया' गानों की तरह शृंगार रस से परिपूर्ण होते हैं। वैसे ये गीत भोटिया भाषा में होने के कारण साधारण लोगों की समझ में नहीं आते। किन्तु यदि उनको समझना ही आ जाये, तो बड़ी लज्जा आने लगती है। क्योंकि इन गीतों की पंक्तियां इतनी नग्न तथा खुली भाषा में बांधी गई होती

है, कि स्त्रियाँ तो मारे लज्जा के सिकुड़ी जाती है। बाज्यू गीतों में वीर रस की कथायें पाई जाती हैं, जैसे आल्हा ऊदल आदि। और तिमली राग साधारण सामाजिक तथा प्रकृति के विषयों पर कहे गये गीत हैं।

महमान की सेवा करने में यहाँ के लोग अपना बड़ा सौभाग्य समझते हैं। उसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाये, बस यही इनकी कामना रहती है। जो भी अतिथि इन के यहाँ जाता है वह इनकी सेवा सदा स्मरण रखता है। निस्संदेह ये लोग कई कारणों से आज के युग से बहुत पीछे रहे हुये प्रतीत होते हैं। परन्तु आज स्वतन्त्र भारत की सरकार ने इस ओर भी दृष्टिपात किया है, आशा है कि अब इन्हें पीछे ही नहीं पड़े रहना पड़ेगा, अपितु वह दिन अब निकट आ पहुँचे है, जब ये लोग आज के युग की चाल के साथ आ मिलेंगे।

किन्नर प्रदेश के निवासी

शिमले से लद्दाख की ओर जाने वाली सड़क के साथ साथ भारत का सीमा प्रदेश ही किन्नर प्रदेश कहलाता है। भारत के प्राचीन धर्म ग्रन्थों में किन्नर प्रदेश का नाम प्रायः आता है। यह वही आदर्श-भूमि है। आज हमें इस प्रदेश के बारे में उतनी जानकारी नहीं है। जितनी प्राचीन भारत में हमारे पूर्वजों को प्राप्त थी। धर्म ग्रन्थों में किन्नर प्रदेश की तुलना देव-भूमि से की गई है। किन्नर शब्द का अर्थ भी अर्ध देव है। यदि देखा जाये। तो आज भी इस प्रदेश की सभ्यता इस बात का प्रमाण है, कि प्राचीन काल में यह प्रदेश अवश्य ही देव भूमि रहा होगा। यदि स्वर्ग के नहीं तो पृथ्वी के देवता तो यहां अवश्य ही वास करते होंगे।

सुन्दरता तथा शरीर की गठन देख कर तो यहां के लोग ऐसे प्रतीत होते हैं, कि ये प्राचीन आर्यों की ही संतान हैं। इसके अतिरिक्त वे स्वयं भी अपने आप को आर्यों की ही सन्तान मानते हैं। इन का खान-पान, रहन-सहन, तथा व्यवहार आदि प्राचीन भारतीय आर्य सभ्यता का प्रतीक है। आतिथ्य सत्कार करना ये लोग अपना परम कर्तव्य समझते हैं। अपने यहां आ जाने वाले महमानों अथवा भूले भटके यात्रियों की सेवा करने में इन्हें बड़ा सुख प्राप्त होता है।

यहां के निवासी अधिकतर बोद्ध-धर्म के मानने वाले हैं। यह सब तिब्बत देश के निकट होने का ही प्रभाव है। दलाई लामा में ही ये लोग अपना अधिक विश्वास रखते हैं। उसी के आदेशों का पालन करते हैं। यह सब कुछ होते हुए भी तिब्बत, अथवा दलाई लामा के देश का नागरिक बनने की इच्छा इन्हों ने कभी नहीं की। भारत का नागरिक होने में ही सदा इन्हों ने अपना बड़प्पन समझा है।

इन किन्नरों के प्रदेश को देव भूमि कहने के और भी अनेक कारण हैं। क्योंकि आज भी देवाताओं के अवशेष यहाँ उपस्थित हैं, जो कभी इस भूमि पर शासन करते थे। यहाँ उनका अपना एक स्वर्ग था। आज भी यहाँ के लोगों ने अपनी पुरातन रीतियों का परित्याग नहीं किया, अपितु उसी का अनुकरण करते चले आ रहे हैं। अपने धर्म में जितना विश्वास शायद इन्हें है, उतना सम्भवतः भारत के किसी अन्य प्रदेश के लोगों में आज दिखाई नहीं देता। धर्म के विषय में ये लोग किसी भी आधुनिक युग के वैज्ञानिक प्रमाण को सुनने के लिये तैयार नहीं। तंत्र-मन्त्र आदि अन्ध-विश्वासों का इन लोगों में बड़ा प्रचलन है। तथा इसी के सहारे यह लोग अपना जीवन बिताते आ रहे हैं। दूसरे शब्दों में यह तन्त्र-मन्त्र आदि इन लोगों के जीवन का एक विशेष तथा आवश्यक अंग है। इन का विश्वास है, कि इन्हीं के प्रताप से इन पर आने वाली बड़ी से बड़ी आपत्ति भी टल सकती है। खान-पान, रहन-सहन, पूजा-पाठ, हारी बीमारी, दुःख-सुख आदि सभी कष्टों में यह लोग इन्हीं तन्त्रों-मन्त्रों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में यह सत्य है, कि इन तन्त्रों-मन्त्रों की ही सहायता से उनके समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं। योग विद्या का इन लोगों को पर्याप्त अभ्यास है। वैसे भारत के प्राचीन योग से ये अब कुछ विमुख हो बैठे हैं, परन्तु फिर भी किसी न किसी प्रकार अपने अथक परिश्रम द्वारा इन लोगों के पास उसका पर्याप्त भाग सुरक्षित है। तप आदि प्राचीन साधनायें करने की इन लोगों में बड़ी दृढ़ रीतियाँ प्रचलित हैं। एकान्त स्थान पर बैठ कर गुरु के बताये हुये आदेशानुसार ये लोग बड़े बड़े कष्ट सह कर कठिन तप करते हैं। धरती के भीतर गुफाओं में बैठ कर, अथवा अपने आप को दीवारों के बीच चुनवा कर जिसमें केवल ऊपर की ओर ही एक सुराख रहता है, जहाँ से इन्हें वायु, भोजन आदि प्राप्त कराया जाता है, साधनाएँ करते हैं। इन लोगों का विश्वास है, कि मन्त्र में इतनी शक्ति निहित रहती है, कि यदि उसे शुद्ध रूप से सिद्ध कर लिया जाये, तो पहाड़ जैसी कठिनाइयों को भी पार किया जा सकता है।

इन लोगों में 'फोग्रा' नाम की एक अन्य प्रथा और भी प्रचलित है जिसके द्वारा इन्हें अनेक कष्ट सह कर अपनी निश्चित साधना करनी पडती है। इन लोगों का विश्वास होता है, कि मानव की सद्गति तभी हो सकती है, जब कि मृत्यु के समय उसके प्राण, शीश द्वारा निकलें अन्यथा उसकी मृत्यु ठीक नहीं समझी जाती, तथा यह धारणा की जाती है, कि मृत्यु के पश्चात उसे अच्छा जन्म प्राप्त नहीं होगा। इसीलिये, इन्हें 'फोग्रा' समान कठिन साधना करनी पड़ती है। इस साधना के आरम्भ करने में सब से पूर्व साधक का गुरु उसे एक मन्त्र का उपदेश देता है, जिसका जप किसी भी स्थान पर शुद्ध रूप से करना पडता है। इस मन्त्र में विशेष गुण यह होता है, कि इसके जप के निरन्तर अभ्यास से साधक के शीश में कुछ दिन उपरान्त सोजन आजाती है। ऐसे समय में अभ्यास का त्याग नहीं किया जाता, अपितु पूर्ण पवित्रता से उसका अवलोकन किया जाता है। फिर कुछ समय बाद माथे से रक्त फूट उठता है, और तद् पश्चात रक्त के फूट पड़ने वाले स्थान पर एक छिद्र हो जाता है, यहीं आ कर साधना पूर्ण हो जाती है। इन लोगों का यह अटल विश्वास है, कि इस साधना से साधक के प्राण मृत्यु समय उसी मस्तक के छिद्र से निकलते हैं, और वह अवश्य ही स्वर्ग-गामी होता है।

इन की इन साधनाओं में किसी भी प्रकार की सफ़ाई, चालाकी, छल तथा कपट आदि का अनुमान आज तक कोई भी नहीं लगा सका, अपितु अच्छे अच्छे आधुनिक विचार के लोग भी इनकी यह अनन्त साधना देख कर दंग रह जाते हैं। और तब उन्हें आभास होता है, कि भारत की प्राचीन संस्कृति में कोई तथ्य अवश्य है। इस लिये यह कहना कदापि सत्य प्रतीत नहीं होता, कि प्राचीन अन्ध विश्वास एक ढकोसला ही था। हो सकता है, कि हम उसके वास्तविक मार्ग से भटक गये हों और तभी हम ने उसे एक व्यर्थ का ढकोसला समझ लिया हो।

किन्नरों की आज की अवस्था हमें अपने भारत की प्राचीन सभ्यता की याद दिलाती है, जब कि भारत का बच्चा बच्चा तपस्वी था। स्थान २

पर ऋषि-मुनियों के आश्रम स्थित थे जन जन के हृदय में त्याग तथा तपस्या की भावनायें जन्म पाती थीं और प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म में एक अपूर्व श्रद्धा रखता था।

इन सदाचारी जनों की वेश-भूषा भी बड़ी सरल है, वैसे तो उस पर भी तिब्बत निवासियों का काफ़ी प्रभाव है, पर फिर भी भारत के आर्यों की अस्त-व्यस्त वेश-भूषा के अनेक चिन्ह इसमें दिखाई पड़ते हैं। स्त्रियां सिर पर एक काले रंग का रुमाल, तथा शेष शरीर की रक्षा के लिये शलवार तथा कुर्ती आदि का प्रयोग करती हैं। जाड़े के दिनों में ऊनी कोटी आदि भी पहनती हैं। स्त्रियों की सुन्दरता इतनी आकर्षक होती है, कि लिखते नहीं बन पड़ता। इनका श्रृंगार भी बड़ा साधारण है। हाथों में चूड़ियां, नाक में बड़े आकार की लौंग तथा कानों में बालियां पहनने से ही इनकी तृप्ति हो जाती है। यह सभी ज़ेवर चांदी के बने होते हैं। पर धनवान लोगों की स्त्रियां स्वर्ण की बनी वस्तुओं का प्रयोग भी करती हैं। साधारण वेश में भी इनका सौंदर्य बड़ा मनोहर लगता है।

किन्नर देश में घर की वृद्धा स्त्री का बड़ा आदर होता है। उसी को पूज्य समझा जाता है। तथा उसी के आदेशानुसार सब रीति आदि कार्यों को वास्तविक रूप दिया जाता है। इसके अतिरिक्त पुरुषों की वेश-भूषा भी अत्यन्त सरल है। ये लोग सिर पर एक टोपी, टांगों में तंग मुहरी का पाजामा, तथा बदन में एक कोटनुमा मिरजई पहनते हैं। पुरुषों को अधिकतर परिश्रम के कार्य ही करने पड़ते हैं। जिन में स्त्रियां भी इनका हाथ बटाती हैं। अधिकतर अपने अवकाश के समय तकली द्वारा सूत कातती रहती हैं। व्यर्थ में समय गंवाने का स्वभाव उनका नहीं होता।

अन्य पहाड़ी जातियों की स्त्रियों की तरह यहां की स्त्रियां विलासिनी नहीं होतीं। शराब, अफ़ीम तथा तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं से इन्हें कोई लगाव नहीं होता। किन्नर वैवाहिक प्रथायें भी बड़ी साधारण होतीं हैं, मेले त्योहारों, तथा उत्सवों आदि पर स्त्री, पुरुष साथ २ मनोरंजन करते हैं।

किन्नर प्रदेश में वर्षा अधिक नहीं होती, इस लिये घोर अकाल पड़ा करते हैं। अकाल के दिनों में अथक परिश्रम करके लोगों को इस पापी पेट के लिये अन्न के दाने एकत्रित करके जीवन रक्षा करनी पड़ती है। अधिक जन-संख्या इस क्षेत्र में ग़रीबों की ही मिलती है, अमीर तो शायद इस सम्पूर्ण क्षेत्र में राज्य घराने के लोग ही होंगे। इसके अतिरिक्त और तो कोई भी ऐसा दिखाई नहीं देता, जिसे अमीर कहा जा सके। किन्तु फिर भी अथक परिश्रम के पश्चात जो कुछ भी जीवन-यापन हेतु उन्हें प्राप्त होता है उसी में इन्हें संतोष रहता है। उससे अधिक प्राप्ति की कभी कल्पना भी इन से नहीं हो पाती।

यहाँ के लोग अधिकतर कृषक अथवा चरवाहे ही होते हैं। यही खेती तथा पशुओं के रेवड़ ही इन की जीविका के साधन हैं। इस क्षेत्र में बड़े बड़े नगर नहीं, अपितु छोटे छोटे ग्राम हैं, गाँव की बनावट भी बड़े अनोखे प्रकार की है। प्रत्येक गाँव के मध्य में एक बिहार होता है, जहाँ यह लोग अपना पूजा पाठ आदि करते हैं। इन बिहारों पर महात्मा बुद्ध के अनेक प्रकार के चित्र तथा पाली भाषा में धार्मिक उपदेश, आदि खुदे होते हैं। इन लोगों के गुरु अथवा धर्म-उपदेशक लोग इन्हीं बिहारों में अपना वास करते हैं। गाँव के सभी घर इसी बिहार के चारों ओर बने होते हैं। यह सभी घर ऊंचाई में अधिक नहीं होते। लगभग सभी अच्छे गाँवों में दो ओर प्रवेश द्वार बने होते हैं। इन्हीं द्वारों में से हो कर ग्रामों के अन्दर प्रवेश किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गाँव में जाने के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं होता। पानी के लिये भी कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है, वह भी केवल प्रकृति के प्रताप से ही बर्फ़ानी पर्वतों पर से बह कर आने वाले खालों (नालों) द्वारा प्राप्त हो पाता है। 'सराहन' इस क्षेत्र का सब से बड़ा नगर है, तथा 'चिनी' ग्राम इस क्षेत्र का सब से अन्तिम भारतीय डाक घर है।

गाँवों में यदि किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े, तो किसी समय तो वह प्राप्त भी नहीं हो पाती। कारण यह है कि सम्पूर्ण गाँव में एक आध दुकान

होती है, और उस पर भी सारी वस्तुएं नहीं मिल पातीं। यात्री लोग जो कि इस मार्ग से लद्दाख के लिये अथवा इस प्रदेश की यात्रा के लिये जाते हैं। उन्हें अपने खान-पान का प्रबन्ध स्वयं ही करके ले जाना पड़ता है। वैसे इस प्रदेश के आदमी अपने यहाँ आने वाले महमानों के लिये सभी प्रकार के आवश्यक साधन जुटा देते हैं। पर ग़रीबी तथा, निरन्तर अकाल पड़ते रहने के कारण वह अपनी हार्दिक कामना रहते हुये भी सामर्थ्य से अधिक सेवा से अपना हाथ खींच लेते हैं।

इस प्रदेश से लद्दाख तक जाने वाले मार्ग पर थोड़ी थोड़ी दूरी के अन्तर पर यात्रियों के ठहरने के लिये भारत सरकार ने धर्म शालाओं का सुन्दर प्रबन्ध कर रखा है। वन विभाग के डाक-बंगले भी कई बार ठहरने के लिये काफ़ी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

ग़रीब तथा कठोर जीवन रखने वाली यह देव-भूमि वास्तव में दर्शनीय है। अशिक्षित होते हुये भी भारत की प्राचीन संस्कृति को सुरक्षित रख छोड़ने वाली आलोप किन्नर भूमि ! भले ही आज का जगत तुझे एक पिछड़ा हुआ प्रदेश कह कर तेरा उपहास कर दे। पर भारत के देव-पुरुष सदा तुझे गौरवमय दृष्टि से ही देखेंगे।

कुल्लू प्रदेश के निवासी

देवताओं की घाटी कुल्लू के नाम से कौन परिचित नहीं है। भारत के लोग इस घाटी के मनोहर दृश्य देखने को सदा लालायित रहते हैं। वास्तव में यह खण्ड ही ऐसा है, जिसे पृथ्वी पर भारतीय स्वर्ग भी कह दिया जाए, तो कोई अनोखी बात नहीं।

यहां का जीवन बड़ा ही सुहावना है। यहां सुख है, चैन है, प्रकृति की गोद है, यहां के लोग प्रकृति के भोले भाले बच्चे हैं। इतने भोले भाले, कि आज के सभ्य संसार का छल, कपट, इन्हें छू भी नहीं गया है। ये इतने सीधे होते है कि दो चार मीठी बातें करने से झट वश में आ जाते हैं। जिस प्रकार इनका स्वभाव सादा है उसी तरह इनका व्यवहार और लिबास भी सादा है। संसार में क्या हो रहा है? और भविष्य में क्या होगा? उसका इन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं अपने आप में खोये, सभ्य जगत से दूर, अपने देवताओं के बर्फ़ानी चरणों और प्रकृति के सौन्दर्य में रत हो कर यह लोग कुछ भी जानने की चेष्टा नहीं करते।

कुल्लु वास्तव में एक सब-डिवीजन है, तथा कांगड़ा जिले की सीमा के साथ स्थित है। इसका क्षेत्र-फल लगभग ६३०० वर्ग मील है। वैसे तो कुल्लू का इतिहास महाभारत के युग से प्रारम्भ होता है। जब कि महाबली भीम-सेन यहां आये थे। परन्तु वास्तविक इतिहास, आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होता है जब कि यहां पहला क़ानूनी राज्य स्थापित किया गया था। इसके पश्चात बीच का कुछ इतिहास मिट भी चुका है। परन्तु फिर भी २००० वर्ष में से इसका १५०० वर्ष का इतिहास बिल्कुल सुरक्षित तथा स्पष्ट है। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन सांग की भारत सम्बन्ध में लिखी गई कृतियों में भी कुल्लू राज्य का हाल काफ़ी विस्तार से प्राप्त होता है। उसके आधार पर उस समय, कांगड़ा, मण्डी, सुकेत तथा काश्मीर का भी कुछ भाग

इस कुल्लू राज्य में शामिल था, परन्तु अनेक उथल-पुथल के पश्चात भी इसका नाम मिटाने में कोई आक्रमणकारी समर्थ न हो सका।

कुल्लू में प्रारम्भ से बहुत समय तक राजपूती राज्य स्थापित रहा, फिर कुछ समय के लिये, तिब्बतियों, गोरखों तथा सिक्खों का राज्य क़ायम रहा, परन्तु सन् १८४६ में इसे अंगरेजी सरकार ने सब-डिवीजन घोषित कर भारत राज्य के आधीन कर लिया।

अब तक कुल्लू भारत से बिलकुल अलग ही रहा था, परन्तु अब यहाँ सड़क की दशा सुधार कर भारतीय मोटर-वाहन के लिये सरल मार्ग बना दिया गया है। इसके अतिरिक्त हमारी सरकार ने इस घाटी में एक हवाई अड्डा भी बनाने की योजना बनाई थी, जो अब काफ़ी हद तक सम्पूर्ण हो चुका है।

मनाली, राहुना, खोंगसर, गन्दूला, कोलांग तथा कुल्लू आदि छोटे छोटे कस्बे इस प्रदेश की अपूर्व शोभा हैं, जिन में अधिकतर बौद्ध तथा हिन्दुओं का ही निवास है। बौद्ध लोग अधिकतर इस प्रदेश के उत्तरी क्षेत्रों में ही देखने को मिलते हैं। शेष भाग में सब हिन्दू जातियों के लोग रहते हैं। पिछली जन-गणना से यह पता चला है, कि इस प्रदेश के बहुत से बौद्धों ने भी अपने आप को हिन्दू ही लिखवाया है। लद्दाखी क्षेत्र के बहुत से बौद्ध अब इस्लाम धर्म को स्वीकार करते जा रहे हैं। पर कुल्लू क्षेत्र में ऐसा नहीं है।

यहाँ कस्बों के अतिरिक्त अनेक छोटे छोटे गांव भी बड़े प्रसिद्ध हैं, जिन में रहने वाले लोग बड़े ही भोले हैं। इन में से बहुत से तो आज के सभ्य जगत से अभी बिलकुल अनभिज्ञ हैं।

यहाँ हर गांव का अपना अपना, अलग देवता होता है, जिसमें गांव के लोग बड़ी श्रद्धा रखते हैं। शुभ अवसरों पर उसकी पूजा की जाती है। कुछ विशेष स्थान भी देवताओं के लिये नियत हैं, जहाँ उनके मन्दिर हैं। ऐसे स्थानों पर दशहरा तथा बसन्त के अवसरों पर विशेष मेले लगते हैं, जिनमें सम्पूर्ण कुल्लू तथा आस-पास के क्षेत्रों के लोग एकत्रित होते हैं। ऐसे अवसरों पर यहाँ के कलाकारों को अपनी वस्तुएँ बेचने का अवसर प्राप्त होता है। यहाँ

के शिल्पकारों के बनाये हुए पश्मीने के शाल बड़े कीमती तथा बड़े प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ का ऊन का काम देश विदेश में सभी स्थानों पर आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

इस प्रदेश के लोगों का पहनावा देखने में तो बड़ा अनोखा प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी पंजाबी पहनावे से कुछ कुछ मिलता जुलता अवश्य है। हाँ, उत्तरी क्षेत्र के लोगों का पहनावा इन से काफ़ी भिन्न है। यहाँ के पुरुष कुर्ता, तंग मुहरी का पाजामा, एक ऊनी जाकेट तथा सिर पर ऊनी टोपी पहनते हैं। और वैसे तो यहाँ बारह महीने ऊनी वस्त्र पहनने का रिवाज है, परन्तु नगरों से सम्बन्धित लोग अब आधुनिक फैशन से प्रभावित हो कर ग्रीष्म ऋतु में सूती वस्त्रों का उपयोग कर ही लेते हैं। परन्तु यह दशा केवल दक्षिणी क्षेत्र की ही है, उत्तरी क्षेत्र के लोग यदि ऐसे फैशन करने लगें, तो अकड़ कर ही रह जायें। वे अधिक वस्त्र पहनते हैं। कारण यह है, कि इधर के कई क्षेत्रों में साल में नौ महीने केवल बर्फ़ की धरती पर ही व्यतीत होते हैं।

स्त्रियों की वेश-भूषा दो प्रकार की है, एक तो पंजाबियों की सलवार कमीज़ तथा दूसरी इस से बिल्कुल भिन्न है। इस में ऊनी धोती, ऊनी कमीज़, ऊनी जाकेट आदि वस्त्रों का स्थान मुख्य है। केशों की रक्षा के लिये यहाँ की महिलाएँ रंगीन वस्त्र का रूमाल सिर के चारों ओर लपेट कर बाँध लेती हैं, जिसका कुछ भाग पीछे की ओर लटकता रहता है।

इन कुल्लू वासिनि स्त्रियों को प्रकृति ने सौंदर्य का तो दान दे रखा है, गोरा रंग, सुन्दर काट छाँट की मुखाकृति, परन्तु फिर भी इन्हें शृंगार से बड़ा लगाव है। बहुत सी स्त्रियाँ तो दो दो चोटियाँ भी कर लेती हैं। कानों में बालियाँ, हाथों में चूड़ियाँ, उंगलियों में छापें तथा नाक में बुलाकें अथवा चुटकी भर की लौंग पहनती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ तो दो दो लौंगें भी पहनती हैं।

सिगरेट अथवा बीड़ी तथा लुंगड़ी पीने का इन्हें बड़ा चाव होता है। यह लुंगड़ी एक प्रकार की नशीली खट्टी लस्सी सी होती है। उसे यह इस प्रकार मन लगा कर पीती हैं, कि कहते ही बनता है। अपने को तो कहीं

ज़रा सी भनक भी उसकी लग जाये, तो उल्टियां करते करते ही पागल हो जायें।

यहाँ की स्त्रियों में परदे की प्रथा नहीं है, पुरुषों के साथ बराबर कंधे से कंधा मिला कर काम करती हैं। मनों बोझ लेकर पहाड़ी रास्तों पर थिरकती हुई चलती हैं। उनमें देखने को तनिक भी सकुचाहट नहीं मिलती। यहाँ तक कि जब ये नई नवेली दुलहन बन कर आती हैं, तब भी सकुचाहट के तनिक भी भाव इनके मुख-मण्डल पर नहीं दिखाई देते।

इस प्रदेश में एक खाना-बदोश जाति भी देखने को मिलती है, जो कभी यहाँ तो कभी वहाँ की पहाड़ियों पर प्रायः दिखाई पड़ती है। इस जाति के लोगों को हेसी कहते हैं। इन लोगों के पास अपने मकान नहीं होते। ये लोग खेमों में रहते हैं। इनका काम केवल भीख मांगना तथा नृत्यों द्वारा जमींदारों तथा किसानों का मनोरंजन करना, और उन्हीं के दिये हुये टुकड़ों पर जीवन व्यतीत करना है। बचपन से ही ये लोग अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देते हैं। दिन भर भीख मांगना, तथा संध्या समय लुगड़ी पीकर मस्त हो जाना, यही इन लोगों की दिनचर्या है।

मनाली कुल्लू प्रदेश का सब से सुन्दर नगर तथा धर्म-स्थान माना जाता है। यहाँ भगवान मनु जी का एक प्राचीन मन्दिर है। इसके अतिरिक्त यहाँ हिडिम्बा देवी का भी एक अत्यंत प्राचीन मन्दिर है। भगवान मनु ने इसी स्थान पर अपनी कठोर तपस्या की थी। इसीलिये पहले इसका नाम मनुलोक, था जो बाद में बिगड़ कर मनाली हो गया है। मनु सूर्य के पुत्र थे। इसके अतिरिक्त हिडिम्बा एक राक्षसी थी जिस ने कुन्ती पुत्र भीमसेन से विवाह किया था। मनाली के लोग उसे देवी समझ कर पूजते हैं। मनाली के मन्दिरों में दशहरा के दिनों में कुल्लू वासियों के ठाठ देखने योग्य होते हैं। नृत्य, गान, चिगरबाबे, ढोल, ताशे आदि के शोर से तमाम घाटी गूंज उठती है। तिब्बत तथा लद्दाख और मैदानी क्षेत्रों के भी बहुत से व्यापारी लोग इन मेलों पर कुल्लू की इस अद्भुत घाटी में, शाल, दुशाले, पट्टू, कम्बल, गरम चादरें, गलीचे, कालीन, नमदे, भांति भांति के जेवर, मेवे तथा सूती वस्त्र बेचने के लिये आते हैं।

हिडिम्बा देवी के मन्दिर पर पशुओं की बलि देने का भी रिवाज है। वैसे तो यहां के प्रत्येक ग्राम में देवी देवताओं पर बलियां चढ़ाई जाती हैं। पर हिडिम्बा देवी की महिमा सबसे बढ़ जाती है।

हिडिम्बा देवी का यह मन्दिर कई हजार वर्ष पुराना है। देवी के नाम पर वहां केवल पत्थर की एक बहुत बड़ी शिला है, जिसमें इन पहाड़ियों की इतनी श्रद्धा है, कि बस उस पर सब कुछ न्योछावर करने को उत्सुक दीख पड़ते हैं।

मन्दिरों के पुजारी जन्त्र-मन्त्र, तथा तान्त्रिक विद्या के सिद्ध-हस्त पण्डित माने जाते हैं। विशेष अवसरों पर इनके शीश पर देवी का प्रकाश आता हुआ बताते हैं। उस समय इनके मुख से जो बात भी निकले, वह भविष्य-वाणी समझी जाती है।

दशहरे के दिनों में देवी के ये भक्त देवी के प्रकाश का आकर्षण बुलाने के लिये, मन्दिर के द्वार पर खुले आंगन में ढोल तथा नगारों पर तालें दे दे कर खूब नाचते हैं। एक समय केवल एक युगल ही नाच में भाग लेता है, उसके बाद दूसरा, फिर तीसरा, और इस प्रकार बारी बारी सभी भक्त लोग इस नृत्य में भाग लेते हैं। भक्त लोग अपने शिर पर जटायें रखना अनिवार्य समझते हैं। अन्य स्थानों के बाल वे भले ही कटवा लें, परन्तु शिर के बाल कभी नहीं कटवाते।

नाचते नाचते भक्त के शरीर में नशा सा अनुभव होता है, और उसका शरीर तड़पता हुआ सा कांपने लगता है। नेत्र मद में डूब जाते हैं। टांगें लड़खड़ाने लगती हैं। तो उस समय अन्य साथी वर्ग के व्यक्ति उसे सहारा देकर देवी की प्रतिमा के पास बिठा देते हैं। जहां बैठ कर वह झूमने लगता है और धीरे धीरे कुछ बोलता भी जाता है, जिसका मतलब यह है, कि देवी का प्रकाश उसके मुख से अपनी बात कह रहा है।

दूसरी ओर पशुओं की बलि दी जाती है, जिसमें भेड़, संगरू, मछली, केकड़े, मुर्गे तथा भैंसे आदि जीवों की बलि देना ही अधिक शुभ समझा जाता है। इन सब बलियों में सब से कठिन भैंसे की बलि चढ़ाना है, क्योंकि उसको मारना

आसान काम नहीं है। कभी कभी तो वह अपनी मौत के साथ ही मारने वाले की भी बलि चढ़ा देता है।

राहला भी कुल्लू घाटी का एक बड़ा ही महत्व-पूर्ण अंग है। इस से कुछ ऊपर ही एक बड़ी शिला है। कुल्लू के लोगों का विश्वास है कि इस शिला के नीचे सांप रहते हैं, जिनके रंग भी भांति भांति के हैं। सर्पों वाली गुफा के नाम से भी यह स्थान काफी प्रसिद्ध है। इन सर्पों में यहां के लोगों की इतनी श्रद्धा है, कि वे इन्हें देवता समान पूजते हैं। बहुत से लोग तो इन्हें उन ऋषि-मुनियों का स्वरूप मानते हैं, जो कि सतयुग, द्वापर, त्रेता आदि युगों में यहां तप करने आये और यहीं लोप हो गये। इन सर्पों में एक विशेष बात यह है, कि यात्री लोग अपने हाथ से इन्हें अनेक भोज्य-पदार्थ खिलाते हैं, परन्तु यह किसी को भी नहीं काटते। बहुत से विद्वानों का यह मत है, कि यह स्थान इतनी ऊंचाई पर है, जहां जाकर सर्प का विष नष्ट हो जाता है, और वह विष हीन होकर ही जीवित रहते हैं। कहते हैं पहले यहां हजारों सांप रहा करते थे। एक अंग्रेज यात्री भी यहां दर्शनों के लिये आया, इतने अधिक सर्प देख कर वह भयभीत हो गया, और गोली चलानी प्रारम्भ कर दी। तब से सर्पों ने इस स्थान का परित्याग कर दिया है, पर पांच जोड़े सर्पों के अब भी यहां रहते हैं। कौन जाने सत्य क्या है, परन्तु यह है वास्तव में एक बड़ा अद्भुत स्थान। पहाड़ी लोग इनके दर्शनों को प्राप्त करना बड़ा ही सौभाग्य मानते हैं।

यहां के लोग बर्फ़ानी रास्तों पर चलने में बड़े निपुण होते हैं अन्य यात्रियों का तो साहस भी नहीं पड़ता, क्योंकि पग पग पर फिसलन का भय रहता है। परन्तु ये कुल्लू वासी बच्चे से लेकर बूढ़े तक जल्दी जल्दी बर्फ़ पर चलने में तनिक भी भय नहीं खाते, तथा बोझ उठा कर भी बेधड़क चलते रहते हैं। भय क्या वस्तु है, यह सपने में भी इन्हें कभी अनुभव नहीं होता।

इन कुल्लू वासियों का वैसे तो मुख्य व्यवसाय कृषि ही है, फिर भी इन्हें दूसरे कामों का सहारा लेना पड़ता है। कारण यह है, कि केवल

कृषि ही इन लोगों के जीवन यापन हेतु पर्याप्त नहीं है। इसलिये भेड़ें तथा बकरियां पालना तथा उन से प्राप्त ऊन का व्यापार करना भी इन का एक महत्त्व-पूर्ण व्यवसाय है। ऊन की तरह २ की वस्तु तैयार करना यहां के लोगों का एक लाभदायक उद्योग है। जिसकी प्रशंसा सम्पूर्ण भारत तथा उसके समीपवर्ती देशों के लोग किया करते हैं।

इस प्रदेश में स्त्रियों का काम केवल गृहस्थी के कार्यों तक ही सीमित नहीं। अपितु उन्हें घर के बाहर खेतों में भी काम करना होता है। धान के पौधे रोपते हुये जब यहां की स्त्रियां मिलकर कोरस की ध्वनि छेड़ती हैं, तो सम्पूर्ण वातावरण झूमने लगता है। वास्तव में इन पहाड़नों के कण्ठ में इतनी मिठास भरी होती है, कि गीत सुनने वाला झूम उठता है। अपने लोक गीतों को, जिनमें श्रृंगार रस का अधिक मिश्रण होता है, यह स्त्रियां वृक्षों की डालों को छांटती हुई जब झूम झूम कर गा उठती हैं, तो लगता है, कि प्रकृति भी बेहोश होने लगी है। वास्तव में इन लोगों का जीवन बड़ा ही भोला तथा मस्ती भरा है।

पहले इस प्रदेश की स्त्रियों में बहु-पति विवाह की रीति प्रचलित थी, परन्तु अब इस रीति का अभाव होता जा रहा है। वैसे तलाक की प्रथा यहां के लोगों में अब भी प्रचलित है परन्तु समाज मे इस प्रथा को अब अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता।

इस प्रदेश के उत्तरी खण्ड में जहां तहां राजपूत लोग बसे हुए हैं। परन्तु इनकी संख्या इतनी कम है, कि अपने कन्याओं के लिये वर की खोज करना इन के लिये बड़ा कठिन हो जाता है। इसलिये आम तौर पर यहां के राजपूतों को अपनी लड़कियों के विवाह या तो काफ़ी आयु के लड़कों के साथ करने पड़ते हैं, और या फिर बहुत ही कम आयु के लड़कों को उनके जीवन के साथ बांध दिया जाता है। कारण यह है, कि मिलते जुलते वंश तथा किसी अन्य जाति के लोगों से अपनी कन्याओं को ब्याह देना इन लोगों में महा-पाप समझा जाता है। बहुत से राजपूत तो इस उत्तरी क्षेत्र के बौद्ध धर्म

के अनुयायी भी हैं, परन्तु केवल नाम को ही वह बौद्ध हैं, उनका सम्पूर्ण जीवन तो हिन्दु धर्म से ही ओत-प्रोत है।

शिकार खेलने के लिये भी कुल्लू का दक्षिणी इलाका बड़ा प्रसिद्ध है। घने पहाड़ी जंगलों में अनेक प्रकार के पहाड़ी नसलों के एक से एक वन-पशु मिलते हैं, जिन में वन-बकरी, चीतल, ककड़, कस्तूरा, बर्फ़ानी रीछ, नील गाय, तंगरोल, पामू, मायतू आदि जानवर बड़े प्रसिद्ध हैं।

कुल्लू की घाटियों में गद्दी जाति के लोग भी स्थान स्थान पर भेड़ बकरियां चराते दीख पड़ते हैं। हर समय इन के हाथ में तकली लगी रहती है, जिस से यह ऊन कातते रहते हैं। इन गद्दी लोगों को अपनी भेड़ बकरियों की रक्षा करने के लिये कुत्ते पालने का भी बड़ा चाव होता है। ये कुत्ते इतने स्वामी-भक्त होते हैं कि किसी भी बाहर के व्यक्ति अथवा जंगली जानवर को भेड़ों के पास नहीं फटकने देते। गद्दी छोकरियां हाथ में तकली उठाये भेड़ के बच्चों को गोदी में बिठा कर जब ऊन कातती हुई पहाड़ी राग छेड़ती हैं, तो स्वर्ग की परियां सी प्रतीत होती हैं। मीठी आवाज़ तथा सौन्दर्य पूर्ण यौवन भगवान ने यहां की स्त्रियों को बिना मांगे ही दे डाला है।

कुल्लू भांति भांति के फलों तथा मेवों के लिये भी काफ़ी प्रसिद्ध है। जाड़े के दिनों यह सम्पूर्ण क्षेत्र बर्फ़ की तहों में दब जाता है। उस समय भी यह अपने सौंदर्य को त्याग नहीं देता, बल्कि पहले से भी अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। इस के आस पास के क्षेत्रों में गरम पानी के चश्मे मिलते हैं, जिन का पानी गठिया रोग के लिये बड़ा लाभदायक विचार किया जाता है। ऊंचे ऊंचे पर्वतीय शिखरों पर प्राचीन इतिहास के प्रतीक अनेक गढ़ तथा मन्दिर यहां देखने को मिलते हैं। वास्तव में कुल्लू देवताओं की तपोभूमि है, जिसे आज के ज़माने के अपवित्र हाथ अभी तक भी नहीं पाये। यहां पवित्रता का साम्राज्य है, यहां प्रकृति का भोलापन है और जिसमें विचरण करती हुई उसकी भोली भाली ज़िन्दगियां दुखती हैं पर मौन साधे रहती हैं।

पांगी प्रदेश के निवासी

पांगी प्रदेश, भारत के उत्तर में जोगिन्दर-नगर तथा काश्मीर राज्य के बीच में स्थित है। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण यहां चारों ओर घने जंगलात दिखाई पड़ते हैं। इन वनों में अधिकतर देवदार तथा चील के लम्बे लम्बे वृक्ष मिलते है। वर्षा पर्याप्त मात्रा में हो जाती है।

पांगी प्रदेश की ऊंचाई लगभग ८००० फ़ीट से १२००० फ़ीट तक है, इसलिये शीत-काल में इतनी अधिक बर्फ़ पड़ती है, कि समस्त यातायात के मार्ग बन्द जाते हैं। कहीं कोई पक्षी तक भी दिखाई नहीं देता। चारों ओर बर्फ़ से ढकी सफ़ेद घाटियां ही दिखाई पड़ती हैं। वास्तव में यह प्रदेश अत्यन्त दुर्गम है, किन्तु आश्चर्य है, कि मनुष्य यहां तक भी पहुँच गया है। न जाने कब अपनी घुमक्कड़ प्रकृति के फलस्वरूप पृथ्वी के इस दुर्गम खण्ड पर मानव ने अपने कदम रखे।

यहां के लोगों का जीवन इस प्रदेश वातावरण से कुछ ऐसा घुल मिल सा गया है कि घोर शीत तथा बर्फ़ानी तूफ़ानों के बीच भी ये लोग यहां ही जमे रहते हैं। बर्फ़ से परिपूर्ण ाटियों की गोद में ही ये लोग अपने कठिन दिवस बिता देते हैं। इन्हें ऐसे दिनों में कोई कष्ट अनुभव नहीं होता परितु ये लोग इस के अभ्यस्त हो गये है।

जो लोग इस प्रदेश के निवासी हैं उन्हें 'पंगवाले' कहते हैं। पंगवाले लोगों का जीवन तो वास्तव में अत्यन्त कठोर है, फिर भी ये लोग न जाने इस प्रदेश से क्यों चिपके हुए हैं। इसे छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाना इन्हें नहीं भाता। इस प्रदेश में वर्ष में केवल चार महीने ही ऐसे हैं जबकि लोग कुछ काम कर सकते हैं। अन्यथा शेष आठ महीने तो इन्हें घर पर बैठ कर ही बिताने पड़ते हैं। इन आठ महीनों में इस क्षेत्र में चारों ओर बर्फ़ के तूफ़ान भड़ा करते हैं।

पाँगी प्रदेश में अधिक लोग ब्राह्मण तथा राजपूतों के वंशज हैं। यहाँ के निवासी अपने आप को "पंगवाले राठो" कहते हैं। इतिहासकारों का कहना है, कि ये लोग वास्तव में प्राचीन हिन्दू आर्यों की ही सन्तान हैं, परन्तु परिस्थिति वश ये लोग यहाँ आ कर बस गये थे। यहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य ने इन्हें मुग्ध कर लिया, तब फिर इन से यह रमणीक खण्ड छोड़ा न गया। ये लोग यहाँ के स्थायी निवासी बन गये। बाद में इन की सन्तानें सभ्य संसार से दूर तथा अलग होने के कारण उससे पूर्ण अपरचित हो गई। और विकास पथ पर चलने में भारत के अन्य लोगों से पिछड़ गई। और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण यह प्रदेश इनके लिये एक छोटा सा जगत बन गया है।

इस प्रदेश में हर समय घोर सन्नाटा छाया रहता है। विशेष जानकारी के लिये हिमाचल प्रदेश के चम्बा जिले के उत्तर पश्चिम में इस पांगी प्रदेश की स्थिति समझनी चाहिये। यात्रा के मार्ग इस प्रदेश में इतने भयानक तथा कठिन हैं, कि देख कर डर लगता है। पहाड़ी कुलियों तथा खच्चरों की सहायता से बोझा ढोने का काम लिया जाता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी साधन यहाँ काम नहीं देता।

जगह जगह अनेक जल-स्रोत प्राकृतिक सौन्दर्य की शोभा बढ़ाते हैं। बहुत से लोगों का विचार है, कि यहाँ के इन स्रोतों का जल इतना गुण-कारी होता है, कि इसे पान करने से शरीर के समस्त विकार दूर हो जाते हैं। तथा देह हृष्ट-पुष्ट रहती है। और कुछ ही दिनों में शरीर का वर्ण लाल हो जाता है।

जून से अक्तूबर मास तक इन लोगों के काम के दिन होते हैं। इन दिनों में इन लोगों को अपने तथा अपने पशुओं के लिये शेष वर्ष भर के लिये भोजन सामग्री एकत्रित करनी पड़ती है। अक्तुबर मास से यह प्रदेश घनघोर बादलों से घिरना प्रारम्भ हो जाता है, तथा जो भी बादल आता है, वही बर्फ़

के रोयें बरसाने लगता है, सम्पूर्ण मार्ग बन्द हो जाते हैं। घाटियाँ बर्फ़ की तहों से परिपूर्ण हो जाती हैं। कोई भी कुछ काम नहीं कर सकता।

यहाँ के पंगवाले लोगों में स्त्रियाँ जितनी सुन्दर तथा बलवान होती हैं, उतने पुरुष नहीं होते। पुरुष नारी की अपेक्षा काफ़ी दुर्बल ही दीख पड़ता है। क़बायली लोगों की तरह यह लोग भी कभी स्नान नहीं करते, यहाँ तक कि दिशा-मैदान से निवृत होने के पश्चात हाथ धोने में भी आलस्य का अनुभव करते हैं।

यहाँ के सभी निवासी प्रायः हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं, पर बौद्ध धर्म का भी उतना ही विश्वास तथा आदर करते है, जितना कि अपने निजी धर्म का। बहुत से अपरचित लोग तो कई बार इन्हें बौद्ध धर्म के अनुयायी ही समझ बैठते हैं, किन्तु बाद में जब पता चलता है, तो उन्हें इन की दशा पर बड़ा आश्चर्य होता है। क्योंकि यह लोग हिन्दू-धर्म के अनुयायी होने के नाते अपने देवताओं की पूजा करने के साथ साथ, बौद्ध धर्म के देवताओं की भी बड़ी श्रद्धा-पूर्वक उपासना करते हैं। सम्भवतः केवल यही जगत में एक मात्र ऐसे लोग हैं, जो एक धर्म के अनुयायी हो कर दूसरे धर्म की उपासना करते हैं।

'शेर बाट' (शिवरात्रि) कार्तिकी पूर्णिमा, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, आदि त्योहार यहाँ बड़ी श्रद्धा से मनाये जाते हैं। इन त्योहारों को मनाने के ढंग हम से सर्वथा भिन्न हैं। किन्तु फिर भी जितनी प्रेम और श्रद्धा के साथ यह लोग इन त्योहारों को मनाते हैं उस पर हमें गर्व है। अन्य देश-वासियों से अलग बस कर भी इन लोगों ने भारत की पुरातन आर्य सभ्यता का ह्रास नहीं होने दिया, बल्कि हर प्रकार उसकी रक्षा की है।

इन लोगों की वेश भूषा भी न्यारी ही है। पुरुष तो एक पाजामा तथा अंगरखा पहनते हैं, इसके अतिरिक्त शीश पर काले रंग की गोल टोपी भी पहनते हैं। जाड़े के दिनों में ऊनी वस्त्रों का प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों का पहनावा पुरुषों से काफ़ी भिन्न है। यह फ्रोक की भांति एक कुर्ता तथा चुस्त पाजामा पहनती हैं, कमर में चादर लपेट कर बांध लेना भी इन स्त्रियों

की वेश-भूषा का एक आवश्यक अंग है। इसके अलावा केशों को ढकने के लिये यह किसी चादर या ओढ़नी आदि का उपयोग नहीं करतीं, अपितु समस्त केश राशि को कंघी से काढ़ कर शीश के ऊपर ही उसे सँवार कर एक छोटे से रूमाल नुमा वस्त्र से बांध लेती हैं। कानों में बालियां, तथा गले में प्राचीन ढंग के चांदी अथवा गिलट के हार पहनती हैं। उंगलियों में छल्ले आदि भी पहनने का उपयोग किया जाता है। बस यही इन की एक साधारण सी वेश-भूषा है।

यहां की स्त्रियां अधिक शृंगार प्रिय नहीं होतीं। किन्तु फिर भी सरल वेश भूषा में बड़ी आकर्षक प्रतीत होती हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा हंस-मुख होता है। परिश्रम के काम इन्हें अधिकतर करने पड़ते हैं, किन्तु फिर भी इन के मुख मण्डल पर हर समय मुस्कराहट छाई रहती है। एकान्त वन में कार्य करते हुए जब यह अपनी कोमल आवाज में गीत गाती है। तो सम्पूर्ण मौन प्रकृति मस्त हो कर झूमने लग जाती है। वैसे यह गीत हमारी समझ में नहीं आते, फिर भी उनकी मस्त तान हृदय को व्याकुल कर देती है।

'पंगवाले' लोगों का प्रत्यक्ष रूप में अपना कोई साहित्य नहीं, क्योंकि ये लोग पूर्ण अशिक्षित होते हैं। पर फिर भी जिन गीतों को यह गाते, तथा जिन कहानियों को कहते हैं, वह अवश्य ही इस बात का प्रमाण हैं, कि इन का अतीत अवश्य ही कभी गौरवमय रहा है।

इस क्षेत्र में डाक व्यवस्था बड़ी कठिन है। फिर भी भारत की सरकार ने अनेक स्थानों पर अब डाक घर खोल दिये हैं। किन्तु आश्चर्य है, कि जितनी डाक वहां पहुँचती है, वह सभी डाक और वन विभाग के कर्मचारियों की ही होती है। शायद ही कोई भाग्यवान निवासी इस देश में ऐसा हो, जिसे कोई एक आध चिट्ठी कहीं से आ जाये, कारण केवल अशिक्षा ही है। यह लोग पूर्ण रूप से अशिक्षित हैं। इसके अतिरिक्त, कोई भी मनुष्य कभी कहीं आता जाता नहीं। इन में अधिकतर लोग तो ऐसे है जो भारत के प्रति भी कुछ नहीं जानते। देहली, बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों के नाम भी अभी उन्होंने

नहीं सुने। किन्तु राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी का नाम इस देश का बच्चा बच्चा जानता है। अपनी भाषा में ये लोग महात्मा गांधी को 'गान्ही महातम' कहते हैं। शुद्ध रूप इन से नहीं बोला जाता।

ये लोग हिन्दुस्तानी भाषा नहीं जानते। जो भाषा यह बोलते हैं, उसे पंगावली भाषा कहते हैं। यह भाषा वास्तव में संस्कृत तथा पाली का ही विकृत रूप है। यदि इन लोगों को संस्कृत भाषा की शिक्षा दी जाये, तो यह उसे बड़ी सरलता से सीख सकते हैं। तथा जगत को उसके आवश्यक उपदेशों से अलंकृत कर सकते हैं।

बहुत से पंगवाली जन ऐसे भी हैं, जो ग्रीष्म काल में जानवरों को मार कर उनका मांस उबाल कर अथवा सुखा कर यत्न-पूर्वक सुरक्षित रख छोड़ते हैं। तथा जिन दिनों यह सम्पूर्ण क्षेत्र बर्फ़ से ढका रहता है तब इसे खाया करते हैं। ये लोग केवल इस लिये मांसाहारी हैं कि काम के थोड़े से दिनों में अन्न आदि अपने लिये एकत्रित नहीं कर सकते। अन्यथा यह किसी भी जीव की हिंसा करना महापाप समझते हैं। पर अन्न की कमी के कारण ये लोग विवश हैं। इन लोगों का विश्वास है, कि मांस खाना पाप तो है, पर यदि उसे परस्पर बांट कर खाया जाय, तो पाप भी विभाजित हो कर कम हो जाता है। इसलिये भोजन के अन्य पदार्थ चाहे ये लोग अकेले ही खा लें, परन्तु मांस कोई भी व्यक्ति बिना बांटे नहीं खाता।

इस प्रदेश के ठीक उत्तर में एक गोलाकार पर्वत है, जिसके दर्शन करना ये लोग बड़ा शुभ समझते हैं। इन का विश्वास है, कि यह वही स्थान है जहां भगवान शङ्कर वास करते हैं। अपनी विपत्ति के दिनों में भी ये लोग इसी पर्वत की ओर मुख कर के अपनी विपत्ति को हरने के लिये भगवान शिव से प्रार्थना करते हैं। इस पर्वत में यहां के निवासियों की बड़ी श्रद्धा है।

इस पर्वत की सब से बड़ी विशेषता यह है, कि आज तक जगत का कोई भी मनुष्य इसके नग्न शरीर को देख नहीं पाया। इस पर सदा बर्फ़ ही जमी रहती है। आज तक जगत का कोई भी फ़ोटोग्राफ़र इस पर्वत का फ़ोटो

नहीं ले पाया। कारण यह है. कि इस पर सदा घनघोर बादल छाये रहते हैं। यदि कभी बादल छिन्न भिन्न होते भी हैं, तो जितनी देर में कोई फ़ोटोग्राफ़र इस शैल का फ़ोटो लेने के लिये कैमरा सैट् करता है, उतनी ही देर में यह सम्पूर्ण देव-स्थान फिर बादलों के आंचल में लीन हो जाता है।

भारत के प्राचीन आर्य ग्रन्थों में भी इस पर्वत का नाम कैलाश-पर्वत के नाम से आया है और केवल यहां के लोग ही नहीं, अपितु समस्त भारत-वासी इस पर्वत में अपनी अपूर्व श्रद्धा रखते हैं।

इस पर्वत का रूप कुछ इस प्रकार का है, जैसे भारत में देव मूर्ति शिव-लिंग होती है। अनेक श्रद्धा रखने वाले यात्री ग्रीष्म ऋतु में प्रायः इस पर्वत के दर्शन करने के लिये, पांगी प्रदेश में आया करते हैं। पर कितने भाग्यशाली हैं। वे लोग जो इस देव-भूमि के वासी हैं। अनेक जगत-विख्यात यात्रियों ने इस पर्वत तक पहुँचने की चेष्टा की, किन्तु लाखों उपाय करने के पश्चात भी आज तक कोई सफल न हो सका। अनेक लोगों का ऐसा भी विश्वास है, कि केवल महान तपस्वी तथा श्रेष्ट योगी ही इस शैल तक पहुँचने में समर्थ हो सकते हैं, अन्यथा और किसी भी संसारी मनुष्य की सामर्थ्य इस देव-स्थान तक पहुँचने की नहीं हो सकती।

किन्तु इस देव-भूमि के प्रहरी कहां के पंगवाले निवासी आज हम से कितने अपरिचित हैं! हमारे ही देश-भ्राता हो कर भी वे हम से दूर हैं। यह सब अशिक्षा का ही फल है। पर अब भारतीय सरकार ने भारत के कोने कोने में बसने वाले भारत वासी को शिक्षित कर डालने का निश्चय कर लिया है। पंगवालों का भी इस में भाग है और वह समय दूर नहीं जब ये अपने आप को पहचान कर श्रेष्ठ-भारत का भाल जगत के समक्ष ऊँचा करेंगे।

क़बायली प्रदेश के निवासी

क़बायली प्रदेश भारत के ठीक उत्तर पश्चिम में काश्मीर तथा पंजाब के सीमा प्रान्त की सीमाओं के साथ स्थित हैं। बीहड, उजाड, तथा पत्थरीली पहाड़ियां ही यहां चारों ओर दिखाई पड़ती हैं। कहीं भी हरियाली के दर्शन नहीं हो पाते। कारण यह हैं, कि इन पर्वतों पर वर्षा बहुत कम होती है और कभी कभी तो सारा साल वर्षा के बिना ही बीत जाता है। पानी कहीं देखने तक को नहीं मिलता। सूखी पहाड़ियों में भला जल प्राप्त हो भी कैसे ? चारों ओर वृक्षों शून्य पर्वत अपने विशाल आकार में खड़े दिखाई पड़ते हैं। गरमियों से कड़ाके की गरमी तथा जाड़ों में भयानक शीत पड़ता है। इसके अतिरिक्त दिन में कड़ी धूप तथा रात्रि के घोर शीत ही इस प्रदेश की मुख्य विशेषतायें हैं।

यह सब कुछ होते हुए भी इस देश में मानव का वास है। यहां पर जो लोग बसते हैं, उन्हें क़बायली कहते हैं। कठिनता से जीविका प्राप्त होने के कारण इन लोगों का जीवन भी भी बड़ा दु:खपूर्ण है। यह आश्चर्य की बात है कि फिर भी इन लोगों का स्वास्थ्य हृष्ट-पुष्ट तथा वर्ण लाल होता है। निस्संदेह इन लोगों को पेट भर रोटी प्राप्त करने के लिये घोर परिश्रम करना पड़ता है।

क़बायली लोग वास्तव में आरम्भ से ही स्वतंत्र से हैं। इनके देश पर सम्भवतः अभी तक किसी भी राज्य को आंख उठाने का साहस नहीं हुआ। जगत पर छाई हुई बर्तानिया हकूमत भी इन्हें परास्त न कर सकी, बल्कि उसने कुछ रुपया इन्हें कर रूप में देना स्वीकार किया था। यही दशा आज पाकिस्तानी राज्य की है। निरन्तर चेष्टाएँ करते हुए भी पाकिस्तानी इनके प्रदेश को अपने राज्य के अन्तर्गत नहीं कर सके।

इन क़बायली लोगों की तो, चित्राली, बाजौरी, चमक़ानी, यूसुफ़ज़यी, उत्मनखेल तथा खट्टक आदि कई जातियां हैं। ये सभी इसलाम धर्म के अनुयायी हैं और अधिकतर पठानी अथवा पश्तो भाषा बोलने वाले हैं। कहीं कहीं बड़ी बस्तियों में हिंदू लोग भी दीख पड़ते हैं, परन्तु उनके भी आचार-विचार कुछ ऐसे हैं, जिन से उनमें हिन्दू तथा मुसलमान आदि की पहचान करना बड़ा ही कठिन है।

क़बायली लोगों की जीविका का साधन पशु चराना, खेती योग्य भूमि में चार दाने बो लेना तथा शिकार करना ही है। वैसे अवसर लगने पर राह चलते यात्रियों को लूट लेना भी इन की एक पुरानी रीति है। इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई, अपितु अन्य कार्य छोड़ कर अब लूट मार की ओर ही ये लोग अधिक ध्यान देने लगे हैं। इस प्रकार इन्हें अपना पेट भरने के लिये रोटी भली प्रकार मिल जाती है। उसके लिये अधिक परिश्रम इन्हें नहीं उठाना पड़ता। पर क्रूरता के काय अधिक दिन नहीं चल सकते। इनका अन्त शीघ्र ही हो जाता है।

इनके प्रदेश में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ता है। सम्पूर्ण गृहस्थी के कार्यों के अतिरिक्त, पशुओं के लिये चारा एकत्रित करना, खेतों में काम करना आदि समस्त कार्य औरतों को ही करने पड़ते हैं। पुरुष तो बस सुबह होते ही पशुओं को चराने के लिये कलेवा आदि से निवृत होते ही वन को चल देते हैं।

यहां के लोग हर समय बन्दूक तथा अन्य हथियार अपने साथ रखते हैं। खाते पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते, हर समय इनके प स बन्दूक अवश्य होती है। कारण यह है, कि इन्हें अपने इस उजाड़ तथा भयानक देश में हर समय प्राणों का भय बना रहता है। न जाने कब क्या हो जाये ? इसी भय से अपनी रक्षा करने के लिये सम्पूर्ण क़बायली लोग अपने साथ बन्दूकें रखते हैं। बन्दूक अब इन लोगों के लिये उतनी ही आवश्यक बन गई है, जितना कि अंधे को लाठी। इन लोगों के छोटे से

बच्चे को भी निशाना लगाने में इतनी दक्षता प्राप्त होती है, कि जिस पर गोली दाग़ी, वह वहीं ढ़ेर हो गया, भागते जानवरों तथा उड़ते पक्षियों पर निशाना लगाने का इन लोगों को बड़ा अभ्यास होता है।

क़बायली लोग प्रायः अनेक क़बीलों में विभाजित हो कर रहते हैं। हर क़बीले का एक सरदार होता है और वास्तव में यही सरदार इन लोगों के परस्पर झगड़ों आदि का निर्णय करते हैं। इन लोगों के सभी झगड़े इनका सरदार अपनी राय अनुसार ही तय नहीं कराता, अपितु निर्णय पंचायत के सामने सभी पंचों की राय अनुसार ही किया जाता है।

इन लोगों के झगड़े भी इस प्रकार भयानक होते हैं, कि सम्भवतः कोई सभ्य नागरिक इसे अच्छा न समझे। यदि इन की किसी से शत्रुता हो जाये, तो मारे क्रोध के यह लोग पागल हो जाते हैं। और जब तक उसे मार न डालें या स्वयं न मर मिटें, तब तक इन्हें चैन नहीं आता। केवल पुरुषों की ही नहीं स्त्रियों की भी ऐसी ही प्रकृति होती है। इस जाति में बहुत से लोग ऐसे भी मिलते हैं जो बलवान शत्रु के समान झुक जाते हैं, तथा अत्यन्त नम्रता पूर्वक व्यवहार करके उससे अपने सम्बन्ध गहरे कर लेते हैं। जब सम्बन्ध पक्के हो जाते हैं, तो ये परस्पर विवाह आदि कर लेते हैं। समय पाकर शत्रु के पुत्र अथवा पुत्री को अपने हाँ बुलाकर मार डालते हैं। अपनी पुत्रियों के सुहाग अपने ही हाथों नष्ट करते समय भी यह लोग नहीं हिचकिचाते। यही कारण है, कि इन क़बायली लोगों में भाई, भाई का विश्वास भी नहीं कर सकता। मनुष्य, मनुष्य के समक्ष प्रत्येक घड़ी मृत्यु के भय से व्याकुल रहता है। सम्भवतः बहुत ही कम लोग क़बायलियों में ऐसे होते हैं, जो प्राकृतिक प्रकोप से मृत्यु को प्राप्त हों अन्यथा अधिकता तो ऐसे ही लोगों की है, जो शत्रुता-वश लड़कर अपने प्राण खोते हैं।

हर समय एक दूसरे शत्रु को मार देने का विचार रखने वाले, तथा अपने प्राणों को हर समय हथेली पर रखने वाले, इन लोगों के प्रति हर एक व्यक्ति यही सोचता है, कि ये लोग, राक्षसों के समान हैं। पर सम्भवतः मानव के प्रति ऐसी धारणा बना लेना ठीक न होगा, क्योंकि मनुष्य का रूप पाकर

जीव पूर्णतया राक्षस नहीं हो सकता। उसके हृदय की किसी कोने में अवश्य ही मानवता के भाव छिपे रहते हैं जो किसी न किसी मार्ग से अवश्य ही फूट उठते हैं।

कबायली लोगों में भी जहां इतनी क्रूरता है, वहां इनके स्वभाव में एक विशेष गुण भी होता है, कि ये लोग अपने अतिथि का बड़ा सत्कार करते हैं। उसके सत्कार हेतु यह बड़ी से बड़ी आपत्ति झेल लेते हैं। यदि ये अतिथि का उचित आदर न कर सकें तो उसका खेद इनके हृदयों से जीवन भर नहीं जाता।

कबायली स्त्रियां अपनी अपूर्व सुन्दरता तथा दृढ़ता के लिये बड़ी प्रसिद्ध हैं। कई बच्चों को जन्म देने के पश्चात भी वह ऐसी ही प्रतीत होती हैं, जैसे अभी अविवाहित युवतियां ही हों। अधिक बन-ठन के रहने का इन्हें चाव नहीं होता, फिर भी अपने सरल शृंगार में यह अत्यन्त आकर्षक तथा भोली भाली प्रतीत होती हैं।

इन लोगों में स्त्री तथा पुरुष के पहनावे में कोई विशेष अन्तर नहीं होता। हां, पुरुष शीश ढकने को पगड़ी बांधते और स्त्रियां सिर पर बालों को ढकने के लिये एक रूमाल बांधती हैं। शेष शरीर की रक्षा के लिये पुरुष तथा स्त्रियां सभी एक तरह के ही बने शलवार तथा कुरते पहनते हैं। ऊंची सी जाकेट पहनना भी इन्हें बड़ा सुहाता है। पांव में देसी प्रकार की मोटी जूतियां, आदि, यही इन लोगों के विशेष अलंकार हैं।

स्त्रियों के केश-शृंगार में दो चोटियां, जो कि कपोलों पर से होकर वक्ष-स्थल को छेड़ती हुई, लटकती हैं, गूंथने का बड़ा रिवाज है। ये स्त्रियां जेवर आदि अधिक नहीं पहनती, पर कानों में बालियां तथा कण्ठ में धातु जन्त्र पहनना इन्हें बड़ा सुहाता है। चांदी आदि धातुओं के बटन बनवा कर कुरतों में लगाने का भी इन्हें काफ़ी शौक होता है।

कबायली लोगों के सभी रीति रिवाज इस्लामी ढंग के होते हैं। इस

देश में एक से अधिक विवाह करने का भी रिवाज है। परदे का रिवाज इन लोगों में नहीं है। कोई भी स्त्री किसी से परदा नहीं करती।

एक बात इन कबायलियों में बड़ी बुरी है, कि ये लोग नहाते धोते नहीं। क्या हुआ, कि वर्ष में एक आध बार मुँह हाथ धो लिया। शरीर पर मैल की तहें की तहें जमीं रहता हैं। एक बार जिस वस्त्र को पहन लेते हैं, उसे वर्ष भर एक या दो बार ही बदलते हैं। यही कारण है, कि सफ़ेद वस्त्रों की अपेक्षा मिट्टी वर्ण कपड़े इन्हें अधिक सुहाते हैं।

इनका भोजन भी बड़ा सरल है। गेहूँ की अपेक्षा मक्की की रोटी से इन्हें अधिक रुचि होती है। तरकारियों की निस्वत गोश्त (मांस) अधिक खाते हैं। गेहूँ के आटे की बाटी तो इन लोगों का प्रिय भोजन है। तथा इसे यह लोग बड़े चाव से खाते हैं।

कबायलियों के रहने के घर अधिकतर, गुफाओं की तरह होते हैं, जिनके द्वार बड़े छोटे होते हैं। अपने पशुओं को भी ये लोग चोरी हो जाने के भय से घर के अन्दर ही बांधते हैं। जिस के कारण घरों में हर समय उनके मल-मूत्र की बदबू घुसी रहती है। और कई घरों में से तो इतनी दुर्गन्ध आती है, कि वहां ठहरना भी बड़ा कठिन लगता है। पर इन लोगों का मन उसी में लगा रहता है। सम्भवतः जन्म से ही इस दुर्गन्ध को सहन करने का इन्हें अभ्यास होता है।

मुल्लाओं में क़बायली लोग बड़ी श्रद्धा रखते हैं। इन मुल्लाओं के इशारे पर ये लोग अपना रक्त तक बहा देने में संकोच नहीं करते। इस्लाम का वास्ता देकर इन से मुल्ला-गण हर बात मनवा लेते हैं। इनके प्रदेश में जितना सम्मान मुल्लाओं को प्राप्त है, उतना किसी अन्य को नहीं है।

इन कबायलियों में तम्बाकू खाने की बड़ी लत है। घर या बाहर जहां कहीं भी ये लोग बैठते हैं तम्बाकू की पत्तियां मुख में दबा कर, पिचिर पिचिर करते हुए थूकते रहते हैं। सारा दिन और सारी रात इनकी

यही अवस्था रहती है। पंचायत में बैठ कर भी यह लोग अपने आस पास थूक थूक कर ढेर लगा देते हैं। न जाने ये लोग कैसे इस घोर दुर्गन्ध को सहन कर पाते हैं। शायद अन्य भारतीय तो इसे सहन न कर पायें।

यह सब घोर अशिक्षा का ही कारण है। यदि इन लोगों को भी पवित्र शिक्षा का अभ्यास कराया जाये, तो कोई कारण नहीं, कि ये लोग अपना सामाजिक स्तर उच्च तथा पवित्र न कर सकें। इन्हें शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। अन्य सभ्य समाजों को देख कर ये लोग इसके लिये तरस रहे हैं। किन्तु अभी तक इनके समीप की सरकारों ने इस ओर कोई पग नहीं उठाया।

संथाल प्रदेश के निवासी

टाटा नगर तथा रांची के समीप के क्षेत्र को ही संथाल प्रदेश कहते हैं, वैसे यह इलाका वीर-भूमि के नाम से विख्यात है। पर्वतों के आंचल में मचलता हुआ यह प्रदेश भी न जाने कब के आदिवासियों से भरा पड़ा है, जो कि संथाल जाति के नाम से प्रसिद्ध है। रांची तथा टाटा नगर जैसे भारत के प्रसिद्ध नगरों में इन्हें परिश्रम करते हुए बहुत से भारतवासियों ने देखा होगा, जो कि दिन रात अथक परिश्रम कर के पापी पेट को अपने गाढ़े पसीने की कमाई से भरते हैं।

दिन भर जी तोड़ कर मेहनत करने के पश्चात सध्या समय ये लोग माथे का पसीना पोंछते हुए अपने डेरों की ओर मुस्कराते हुए लौटते हैं तो इनकी सुहृदयता को देख कर कलेजा शान्त हो उठता है। आज के सभ्य कहलाने वाले सुस्त मानव की तरह इनके चेहरों पर जरा सी भी परेशानी की रेखा दिखाई नहीं पड़ती। ऐसा प्रतीत होता है, मानो सुख, शान्ति, तथा प्रसन्नता के सम्पूर्ण खजाने भगवान ने केवल इन्हीं के लिये बनाये हों। चोट खा कर भी हर समय मुस्कराते रहना इनका स्वभाव है। इसका यह अर्थ नहीं कि शायद वह धनवान हैं। अपितु बिना मुस्कराये उन से रहा नहीं जाता। वे ग़रीब हैं, दिन भर मेहनत मजदूरी करने के पश्चात् ही रात को इन्हें रोटी मिल पाती है।

इन के कथनानुसार तथा ऐतिहासिक सूत्रों से ऐसा जान पड़ता है, कि वास्तव में ये लोग इस प्रदेश के रहने वाले नहीं, अपितु रामगढ़ क्षेत्र ही पहले इनका अपना क्षेत्र था। इतिहासकारों का ऐसा मत है, कि अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रामगढ़ क्षेत्र में एक बार वर्षा न होने के कारण इतना भयानक अकाल पड़ा कि जनता भूखों मरने लगी। हजारों घर उजड़

गये। चारों ओर हाहा-कार मच गया। और लोग भूख से बिलख बिलख कर प्राण देने लगे। ऐसी अवस्था में वहाँ के लोग इस प्रदेश को छोड़ पेट की आग बुझाने की खोज में वहाँ से निकलने लगे। इन आदिवासियों को भी वह प्रदेश छोड़ना पड़ा, और जीवन के लोभ में ये अभागे घूमते घूमते यहाँ चले आये, और पहाड़ों के आँचल में बस गये।

पेट के लिये रोटी उपलब्ध करने की चिन्ता ने इन्हें महान परिश्रमी बना दिया। आलस्य को इन लोगों ने बिल्कुल त्याग दिया और अपनी आने वाली नसलों को भी काम की ओर प्रवृत्त किया। यही कारण है, कि संथाली लोग सदा परिश्रम से ही अपना जीवन पालने के अभ्यासी हो गये हैं।

ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता, कि संथाली लोग वास्तव में किन प्राचीन लोगों के वंशज हैं। क्योंकि इनके प्रति इतिहासकारों के भिन्न भिन्न मत हैं। परन्तु इन के मुखों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे शायद ये लोग भारत की उन द्राविड़-जाति के लोगों की संतानें हैं, जो आर्यों काल में भी पहले इस भारत-भूमि पर निवास करती थी।

संथाल लोग अधिकतर पक्के रंग के होते हैं। आर्य वंशजों की भाँति इनका शरीर गोरा नहीं होता। इसके अतिरिक्त संसार की अन्य आदिम-जातियों के लोगों की तरह ये लोग भी अधिकतर, वस्त्रों का उपयोग नाम मात्र को ही करते हैं। परन्तु नगरों के समीप रह कर तथा वहाँ के लोगों के रहन-सहन से प्रभावित हो कर अब ये लोग वस्त्रों का कुछ उपयोग करने लगे हैं। किन्तु फिर भी शरीर का अधिक भाग नग्न रखने की ही इन्हें आदत सी है। पुरुष केवल एक धोती ही पहनते हैं, जो कि घुटनों से ऊपर जंघाओं तक ही बंधी होती है। शुभ अवसरों अथवा मेले दसहरों पर कभी ये लोग पगड़ी तथा कुर्ते का उपयोग भी कर लेते हैं। अन्यथा अधिकतर शरीर पर धोती के सिवाय अन्य वस्त्र पहनना इन्हें नहीं सुहाता। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी केवल एक धोती ही पहनती हैं, जो कि पाँवों से काफ़ी ऊँची बंधी होती है। चोली अथवा ब्लाऊज़ पहनने में इन्हें आलस प्रतीत होता है, इस लिये शरीर के इस

भाग पर यह कोई वस्त्र नहीं पहनतीं । हां, वक्षःस्थल को ढकने के लिये उसी धोती के एक आंचल को छाती पर लपेट लेती हैं । अधिक आभूषण पहनने का चाव इन्हें नहीं होता । फिर भी दो चार पुरातन फ़ैशन के जेवर इन में प्रचलित हैं ।

बांसुरी बजाने का जितना चाव इन संथाली लोगों को है उतना सम्भवतः संसार की किसी अन्य जाति को नहीं है । वंशी का महत्त्व यह अपने लिये तो कम से कम इतना अधिक समझते हैं, कि हर समय बांसुरी इन के हाथ में ही दिखाई पड़ती है । अपने ढोरों को चराने के लिये जब ये लोग जंगल की ओर वंशी की धुन छेड़ते हुए चलते हैं, तो सारा वातावरण झूम उठता है । इसके अतिरिक्त नाचने गाने का भी इन्हें बड़ा शौक है । खुशी के अवसरों पर स्त्री तथा पुरुष दोनों साथ साथ मिलकर नाचते हैं । नाचते समय संथाली गीत गाने का भी प्रचलन है । वंशी, ढोलक तथा नगारे आदि ही इनके प्रमुख वाद्य-यन्त्र हैं । बसन्त के त्यौहार को जिसे कि संथाली भाषा में 'बाहा' कहा जाता है, ये लोग बड़े बाजे गाजे तथा नाच रंग का आयोजन करते हैं । वास्तव में नाच तथा संगीत का इनके जीवन में इतना अधिक महत्व है, कि कोई भी काम ये लोग बिना संगीत के करना अधूरा समझते हैं । और यही हाल नृत्य का भी है । राह में चलते हुए खेतों में काम करते हुये तथा दिन रात गीतों की ही मधुर ध्वनि इनके मुख से फूटती रहती है ।

इन लोगों की सामाजिक रीतियां भी बड़ी अनोखी हैं । विवाह आदि सम्बन्धों का ढंग इन लोगों में कुछ कुछ पाश्चात्य देशों के लोगों की तरह ही निश्चित किया गया प्रतीत होता है । जब लड़की वाले को कोई योग्य वर अपनी पुत्री हेतु दीख पड़ता है, तो वह अपनी लड़की की सगाई के लिये लड़के वाले से प्रार्थना करता है । किन्तु वर की खोज यूं ही नहीं की जाती, और न ही मां बाप ही इस के लिये मारे मारे फिरते हैं । बल्कि जब कन्या विवाह योग्य हो जाती है, और पिता को उसकी शादी की चिन्ता होती है तो लड़की का पिता अपने कुटुम्ब के 'बिचोली' अथवा 'अगुआ' के पास जाता है ।

(विवाह आदि सम्बन्ध की बात चीत करने तथा वर चुनने का काम अगुआ पर ही निर्धारित होता है।) तथा उससे अपनी पुत्री के लिये कोई योग्य वर तलाश करने के लिये कहता है। क्योंकि यह सब कार्य उसी पर निर्भर रहते हैं। जब वर की तलाश हो जाती है, और दोनों पक्षों के माता पिता उनका सम्बन्ध जोड़ने के लिये राज़ी हो जाते हैं, तब लड़के को लड़की से मिलने के लिये बाजार में कोई स्थान निश्चित किया जाता है। लड़की को सजा धजा कर उसी स्थान पर किसी शुभ महूर्त में ले जाया जाता है। लड़का भी वहां पहुंच जाता है। सभी लोग उन्हें अकेला छोड़ कर चले जाते हैं। और एकान्त में वे एक दूसरे को पसन्द करते हैं।

जब वे दोनों परस्पर राज़ी हो जाते हैं तब विवाह की तैयारियां प्रारम्भ की जाती हैं पर इस से प्रथम भी कुछ आवश्यक रीतियां पालन की जाती हैं। जैसे जब वर तथा कन्या की परस्पर अनुमति हो जाती है, तब दोनों पक्षों की ओर से मां बाप एक दूसरे को 'मूढ़ी' तथा 'चिउड़ा' खरीद कर भेंट करते हैं। इस प्रकार सगाई हो जाती है। और विवाह की बात पक्की समझी जाने लगती है। इस के बाद लड़के के घर वाले लड़की वालों को श्रद्धा अनुसार रुपये भेंट करते हैं। जिन में लड़की की माता, पिता तथा नानी का हिस्सा होता है। इतना हो जाने पर ही शादी का दिन नियत किया जाता है। फिर निश्चित किये हुए दिन ही लड़का अपनी बारात के साथ लड़की के घर पहुंचता है।

जब बारात लड़की वाले के द्वार पर पहुंच जाती है, तो संथालियों का प्रसिद्ध नृत्य 'पंकी' होता है, इसमें केवल वर पक्ष के लोग ही भाग लेते हैं। नृत्य क्या है, अच्छा खासा हू-हल्लड़ मचाया जाता है। हाथों में बड़े बड़े लट्ठ लिये हुये हा-हू कर के ही ये लोग नृत्य करते हैं। ऐसा जान पड़ता है, जैसे किसी दल में बड़े जोर शोर की लड़ाई हो रही हो। यह है संथाली लोगों के यहां की बारात आने पर मनाई जाने वाली सब से पहली रीति।

इसके पश्चात लड़की वाले के यहां स्त्रियों के नृत्य होते हैं। यह नृत्य भी बड़े उल्टे सीधे होते है। संथाली भाषा में इस प्रकार के नृत्य को 'दोंग' के नाम से याद किया जाता है। इस नृत्य में भी काफ़ी हू-हल्लड़ मचाया जाता है।

इसके बाद समस्त उपस्थित-गणों के समक्ष वर तथा वधू को सजा धजा कर दो टोकरों में बिठाया जाता है। इस प्रदेश में विवाह के समय वधू लोगों अथवा अपने पति से परदा नहीं करती, अपितु खुले मुंह रहती है।

टोकरों में वर वधू जब बिठा दिये जाते हैं, तभी सिन्दूर-दान की विधि सम्पन्न की जाती है। इसके बाद वर तथा वधू को नहला धुला कर दोनों के हाथ में धान तथा हल्दी आदि का कंगन बांध दिया जाता है। और यह तब तक बंधा रहता है, जब तक कि यही कंगन के धान कुल्ले नहीं छोड़ने लगते। कारण यह है, कि बांधते समय इन धानों को पानी में डाल कर खूब भिगो लिया जाता है। भीगे-पन की वजह से यह धान दो चार दिन बाद ही अंकुर छोड़ने लगते हैं।

अंकुर फूट आने पर किसी भी शुभ दिन अथवा शुभ महूर्त में कंगन खोल दिया जाता है। तभी वर तथा कन्या का मेल होता है। जब तक कंगन न खुले, तब तक एक दूसरे से इन्हें मिलने नहीं दिया जाता। कंगन खुलने के पश्चात ही, उन दोनों का पारस्परिक मेल उचित समझा जाता है। विवाह से पूर्व तथा कंगन खुलने से पहले यह कर्म महा-पाप समझा जाता है। उत्तर-प्रदेश, पंजाब, बिहार, बंगाल, मध्य भारत आदि प्रान्तो के हिन्दुओं में भी ऐसी ही कुछ एक भिन्न प्रथाएं प्रचलित हैं।

संथाल जाति में २१ वर्ष से कम आयु के वर तथा २० वर्ष से कम आयु की कन्या का विवाह नहीं हो सकता। ऐसा इनका सामाजिक नियम है। जिसे यह अन्य भारतीय जातियों की तरह नहीं तोड़ते अपितु हर प्रकार उसका अनुकरण करते हैं। विवाह को संथाली भाषा में 'बपला' कहते हैं।

विवाह होने के पश्चात संतान की आस लगाई जाती है। और फिर एक शुभ दिन भगवान उनकी इस आशा को भी कभी न कभी पूरा कर ही

देता है। उस समय नाच गाने आदि का विशेष कार्य-क्रम नियत किया जाता है। संतान उत्पन्न होने पर जो कुछ रीतियां अदा की जाती हैं, उन्हें संथाली भाषी 'नार्या' कहते हैं। कन्या के जन्म पर यह उत्सव कम से कम ३ दिन तक मनाया जाता है। परन्तु पुत्र होने पर 'नार्या' का यह उत्सव अधिक दिन तक भी मनाया जाता है। पिता आदी शिशु के सभी पूज्य जन उसे आशीर्वाद देते हैं। ऐसे अवसर पर डट कर ताड़ी-पान किया जाता है। और केवल पुरुष ही नहीं, अपितु स्त्रियां भी इसे पीने में कोई कसर उठा नहीं रखतीं।

फिर पुत्र बड़ा होने लगता है। तो कुछ दिन पश्चात उसका मुण्डन संस्कार सम्पन्न कराने की रसम अदा की जाती है। इस रस्म पर भी राग-रंग की गोष्ठियां जुड़ जाती हैं। तथा जी खोल कर नृत्य तथा दावतें की जाती हैं।

मृत्यु आदि संस्कार भी इन के बड़े अनोखे प्रकार से होते हैं। पर दाह संस्कार इनका हिन्दू जाति की भांति ही किया जाता है। तीन दिन के पश्चात फूल चुने जाते हैं। मरने वाले का ज्येष्ठ पुत्र ही फूलों को ले कर दामोदर नदी में छोड़ आता है। इन फूलों में मरने वाले की खोपड़ी की ही दो चार हड्डियां होती हैं। फूल छोड़ने का भी बड़ा विचित्र ढंग है। जो पुत्र भी इन फूलों को छोड़ने जाता है, वह नदी में खड़ा हो कर, उन फूलों को अपने सिर पर रख लेता है, तथा मरने वाले के लिये विधाता से स्वर्ग की याचना करता हुआ नदी में डुबकी लगा देता है, फूल सिर पर से पानी में छूट पड़ते हैं, और वह डुबकी लगाने वाला तुरन्त पानी से ऊपर उठ जाता है। फिर भली-भांति स्नान कर के घर को लौट आता है।

संथाली लोगों के लिये दामोदर नदी ही सब से पवित्र नदी है। यह लोग इसे पाप-नाशिनी, तथा पवित्र तीर्थ-स्थान मानते हैं। इन का विश्वास है कि इसमें स्नान करने के पश्चात उन के सम्पूर्ण पाप धुल जाते हैं। मृतकों के फूल

छोड़ने पर भी ऐसा ही विचार किया जाता है, कि उसके सम्पूर्ण पाप दामोदर नदी में स्नान करके नष्ट हो चुके हैं, इस लिये उन्हें अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त होता है।

वर्षी आदि मनाने का भी इस जाति में प्रचलन है। इस अवसर पर मृतक के समस्त प्रेमी-जन, सगे-सम्बन्धी, तथा अन्य लोग उसके घर एकत्रित होते हैं। तथा उनको भोज दिया जाता है। इस अवसर पर धर्म की कथा की जाती है। वैसे यह कथा हिन्दू धर्म से अपना सम्बन्ध नहीं रखती। परन्तु इसका आधार हिन्दू-धर्म ही है।

संथालियों की लोक-कथाओं से पता चलता है, कि मानव की उत्पत्ति अण्डे से हुई है। परन्तु सत्य क्या है, यह तो वही जाने,जिसने मानव की रचना की। ऐसे अनुमान तो अनेक मानव जातियों के विद्वानों ने लगाये हैं। वैज्ञानिकों ने भी इस की बड़ी खोज की है। परन्तु विश्वास से कुछ भी कहना कठिन है। क्योंकि बहुत से विद्वानों ने वैज्ञानिकों की थाह का भी सप्रमाण खण्डन किया है।

संथाली लोग गायों को बड़े आदर की दृष्टी से देखते हैं। तथा इनके यहाँ गौ-पूजन का एक त्योहार भी होता है, जिसे यह लोग बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। संथाली लोग अपनी भाषा में इस त्योहार को 'सोहाराम' के नाम से याद करते हैं। यही इन लोगों का एक श्रेष्ठ त्योहार है। इस अवसर पर गाँव का धर्म-नायक अथवा पण्डित लोगों की इच्छानुसार गौ-पूजन के लिये कोई शुभ दिन निश्चित करता है। तथा उस दिन सारी रात उसे जागरण करना पड़ता है तथा वह व्रत भी रखता है। और अगली सुबह नदी या तालाब में जा कर सारे गाँव वासियों के साथ स्नान करता है।

इसके पश्चात वहीं किनारे पर एक स्थान को लीप पोत कर, स्वच्छ बना कर मिट्टि तथा सिन्दूर की वेदी बनाई जाती है और उसमें चावल डाल कर उस पर एक अण्डा रख दिया जाता है। फिर इसी स्थान पर एक मुर्गे की भेंट चढ़ाई जाती है। एक एक करके गायों को वेदि के समीप ले जाया जाता है। जो गाये अपने पगों से उस वेदि को रोंद कर चली जाती है।

उसी के पांवों को जल से धोकर उसके सींगों को तेल से चुपड़ दिया जाता है, तथा तमाम शरीर पर सिन्दूरी ठप्पे लगा दिये जाते हैं। और उस गाय का पूजन किया जाता है। केवल यही नहीं, अपितु साथ साथ गाँव के चरवाहे की पूजा भी की जाती है। यह क्रम सारा दिन रहता है। शाम होने पर ढोल, नगारे तथा बाँसुरी बजाते हुये यह संथाली जन गाँव के हर घर के सामने बारी बारी जाते है, तथा खूब नृत्य करते हैं। जिस घर के आगे भी जाकर इन की मण्डली नृत्य करती है। उसके लिये यह आवश्यक है, कि वह गुड़ अथवा मिठाई आदि उन में बाँट कर उनका सत्कार करे। रात्रि के समय स्त्रियों की रयन-फेरी होती है। इस समय वह थालियों में धूप, दीप, रखकर आदि गायों का पूजन करती और नाचती गाती फिरती हैं। यह उत्सव तीन दिन तक मनाया जाता है।

यह है इन संथालों का सरल जीवन। यह लोग अभी तक पूर्ण अशिक्षित ही रहे हैं। पर यदि ये लोग शिक्षित हो जायें, तो अवश्य ही भारत के उच्च नागरिकों में गिने जायें। क्योंकि यह लोग बड़े परिश्रमी तथा समय का उपयोग करने वाले हैं। चाहे भले ही यह आर्य वंशजों से संबन्धित न हों, फिर भी जब ये हमारे बीच रहते हैं, तथा भारत भूमि की सेवा कर अन्न खाते हैं तो ये हमारे ही भाई हैं। क्योंकि हम भी तो इसी भूमि के अन्न से पल रहे हैं।

यही सोच कर भारत सरकार ने अब इस ओर अपनी आंख उठाई है। आशा है, कि ये लोग शीघ्र ही शिक्षित होकर देश के भविष्य निर्माण के लिये जुट जायेंगे।

उराँव प्रदेश के निवासी

उरांव प्रदेश बिहार राज्य के दक्षिण पश्चिम में सोन महा-नदी के आस पास के पहाड़ों के आंचल में स्थित है, जिसमें रांची, हजारी-बाग आदि कई जिले सम्मिलित हैं। यह सारा प्रदेश घोर वनों से घिरा हुआ है, कि यहां की शोभा देखते ही बन पड़ती है इसके अतिरिक्त 'कोयल' तथा 'स्वर्ण रेखा' नाम की दो बरसाती नदियां भी इस क्षेत्र की शोभा को चार चांद लगा देती हैं। कहने को तो यह नदियां बरसाती हैं, परन्तु फिर भी जल की मात्रा इनमें कम नहीं होती। केवल शोभा की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह प्रदेश भारतवर्ष का एक श्रेष्ठ-खण्ड माना जाता है।

समुद्र-तल से लगभग १५०० फ़ुट की ऊँचाई पर स्थित इस खण्ड पर वैसे तो कूर्मा, होस, मुण्डा, खरिया, उरांव तथा असुर आदि अनेक आदिवासियों का वास है, परन्तु इन में प्रधानता उरांव तथा मुण्डा जाति के लोगों की है। इन में भी श्रेष्ठ जाति उरांव को ही माना जाता है।

इतिहासकारों का मत है, कि यह प्रदेश इन लोगों का असली देश नहीं है बल्कि इन का असली देश, रोहतास खण्ड की प्रसिद्ध नदी तुगंभद्रा के निकट है। कहा जाता है,कि हिन्दुओं के श्रेष्ठ ग्रंथ रामायण में जिस किष्किंधा पुरी का नाम आता है, वह नगर भी यहीं कहीं इसी क्षेत्र में स्थित था। परन्तु न जाने किन कारणों वश वह मिट गया, जिसका कोई भी अवशेष आज यहां नहीं है।

कुछ एतिहासिक स्रोतों से पता यह भी चलता है,कि किसी प्रसन्नता के अवसर पर जब कि ये लोग अपने देश में खूब हँस-खेल रहे थे, तथा स्वभाव वश शराब के नशे में चूर पड़े थे, उस समय रात्रि को एक आर्य सेना ने इन पर आक्रमण कर दिया, और जल्दी में यह उनका सामना न कर सके। इनके बहुत से लोग इस आक्रमण का शिकार होकर मारे गये। शेष जो बचे उन्होंने किसी भी प्रकार इस प्रदेश से भाग कर अपनी जानें बचाई! सम्पूर्ण रोहतास

खण्ड पर आर्य योद्धाओं ने अपना अधिकार जमा लिया। और अपने प्राणों की रक्षा के लोभ में इन आदिम-जातियों को अपनी जानें इस उरांव प्रदेश के घोर वनों में छुप कर बचानी पड़ी। ज्यों ज्यों बीते दिनों की स्मृतियां मिटने लगीं, त्यों त्यों इन्हें अपने आप को बसाने का ध्यान आया। दिन रात जुट कर, अथक परिश्रम द्वारा इन्होंने इस नये अपरचित प्रदेश के घोर वनों में अपने रहने के लिये घर बनाये, तथा वनों को काट काट कर खेती योग्य भूमि प्राप्त की। धीरे धीरे ये लोग कर्नाटक से ले कर नर्मदा नदी के तट तक फैल गये,परन्तु फिर न जाने किन कारणों वश इन का क्षेत्र सीमित ही रह गया। इन के दूसरे क्षेत्रों पर अनेक आर्य योद्धाओं ने अपने राज्य जमा लिये और ये लोग एक संकुचित क्षेत्र में दब कर रह गये।

बहुत से लोगों का तो यहां तक कहना है, कि इन लोगों में जो उरांव जाति के लोग हैं, वे रामायण के उप-नायक महाराजा सुग्रीव आदि वानरों के ही वंशज हैं। इतिहासकारों ने भी अनेक खोजों के पश्चात लोगों के इस काल्पनिक कथन की पुष्टि की है। क्योंकि इन के जीवन में बहुत सी ऐसी बातें हैं, जो कि वानर पूर्वजों की कहानी में साफ़ देखने को मिलती हैं। इसके अतिरिक्त आर्य संतति से सम्बन्ध न रखते हुये भी यह लोग रामायण के प्रधान नायक भगवान श्री रामचन्द्र, तथा सुश्री जानकी की उसी प्रकार आराधना करते हैं जितनी की श्री राम-भक्त हनुमान ने की थी। 'राम' शब्द में ही यह लोग अपनी महान् श्रद्धा रखते हैं। तथा उसके प्रति किसी प्रकार का भी अपमान-सूचक-शब्द यह सहन नहीं कर पाते।

इसके अतिरिक्त इनमें एक बात और भी विशेष महत्वपूर्ण है, कि ये लोग आर्य न होते हुए भी हिन्दू देवी देवताओं की ही उपासना करते हैं। शिव, विष्णू, ब्रह्मा, आदि परम देवों में इनको बड़ा विश्वास है। अपने दुःख के दिनों में यह उन्हीं की शरण में जाते हैं तथा उन्हीं को अपना एक मात्र दुःख-निवारक मानते हैं।

यह भी पता चला है, कि इन लोगों के असली पूर्वज प्राचीन भारत के द्राविड़ आदि लोग थे। हालांकि द्राविड़ लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, तथा धर्म आदि सभी छ आर्य लोगों से बिल्कुल भिन्न हैं। फिर भी अन्य द्राविड़-जातियों की अपेक्षा यह उरांव जाति के लोग द्राविड़ होते हुए भी अपने आप को आर्य ही मानते हैं, तथा हिन्दू धर्म का ही एक अंग समझते हैं। यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है, जिस से यह स्पष्ट होता है, कि यही लोग वास्तव में रामायण के श्रेष्ठ-शब्द 'वानर' के वंशज होंगे। इन्होंने राम भक्ति में डूब कर ही लंका पुरी के युद्ध में उनका साथ दिया होगा। आज हमारे सामने कोई भी ऐसा अवशेष नहीं; जिस से कि हम वास्तविकता को दृढ़ता पूर्वक समझ पाते, परन्तु इस भारत खण्ड का वातावरण बता रहा है, कि यह उरांव राम सेवक वानरों की ही संतानें हैं, इन के जीवन से लिपटी हुई परम्परायें प्राचीन भारत की महान इतिहास-कृति रामायण के शब्दों से स्पष्ट हो जाती हैं, कि यह कोई काल्पनिक महा-काव्य नहीं, अपितु भारत की प्राचीन संस्कृति का एक गौरवशाली इतिहास है, जिस पर भारत को सदा गर्व रहा है।

उरांव लोग वास्तव में वानर केवल इसी लिये कहे जाते हैं, कि आर्य लोग जिन पिछड़ी हुई जातियों को अपने से नीची अथवा असभ्य विचार करते थे, उन्हें वह असुर, वानर आदि नामों से सम्बोधित करते थे। असुर का अर्थ है राक्षस, तथा वानर का अर्थ है, (वा+नर) 'अर्ध+मानव', 'आधा आदमी'।

असुर अथवा राक्षस, उन लोगों को कहा जाता है, जो कि मांसाहारी होते हैं, तथा मनुष्य का आखेट करना अपना धर्म समझते हैं। वनों में रहना तथा मदिरा पान करना ही उनका ध्येय होता है। मां-बाप, भाई-बहन देश-धर्म के प्रति वह अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते। किसी का आदर करना वे नहीं जानते। हर समय सुन्दर नारियों के सतीत्व को दूषित करना तथा मनुष्य-मात्र पर अत्याचार करना ही इन्हें अच्छा लगता है। ये लोग पूर्ण अशिक्षित होते हैं। भर पेट खाना तथा खाने के लिये ही जीवित रहना इनका

लक्ष्य होता है। इस से अधिक इन्हें किसी वस्तु की जानकारी नहीं होती। यह हर प्रकार से जंगली होते हैं। इसलिये आर्य लोग जब सब से पहले भारत में आये और उन्हें इस भूमि खण्ड पर अनोखी अनोखी जंगली तथा मांसाहारी जातियां देखने को मिलीं, तो उन्हों ने उनकी प्रकृति तथा स्वाभावानुसार उनके वैसे ही भांति भांति के नाम रख दिये।

इसी प्रकार 'मलेक्ष' नाम, जो कि 'म्लिष्ट' शब्द का अपभ्रंश है, इसका अर्थ है, जिसकी भाषा शुद्ध न हो। आर्य लोगों को, जिन लोगों की बात-चीत समझ में नहीं आती थी, तथा जिनका वर्ण काला न होकर कुछ कुछ ताम्र-वर्ण होता था, उन्हें वह मलेक्ष कहते थे।

इस जाति का नाम वानर इसलिये पड़ा, क्योंकि इन में मानव होने के साथ साथ पशुओं के से भी कुछ आचरण दीख पड़ते थे। परन्तु जिस समय भगवान रामचन्द्र की इस वानर जाति से मित्रता हुई, तो श्री राम ने इन्हें छाती से लगा लिया। इसके पश्चात ही 'वानर' जाति 'उरांव' नाम से प्रख्यात हुई। यह नाम इस जाति का इसलिये पड़ा, कि आर्य-वीर भगवान राम ने इस दूषित जाति को अपने हृदय से लगा कर पवित्र किया था। यह प्रथम द्राविड़ जाति थी, जिस से आर्यों ने अपने सम्बन्ध स्थापित किये। इस से पूर्व सभी आर्य इन आदिम-जातियों को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे।

जिस प्रकार लंका के युद्ध में रामायण के कथनानुसार इस वानर जाति की सेनाओं के प्रति उल्लेख मिलता है, कि उन्होंने बड़े बड़े पत्थरों, तथा वृक्षों के तनों को उखाड़ उखाड़ कर इन्हें शस्त्र के रूप में प्रयोग किया था, तो यह झूठ नहीं है, अपितु आज भी इन के आखेटों में अधिकतर ऐसे ही शस्त्रों का उपयोग होता है। जिस समय यह आखेट के लिये प्रस्थान करते हैं, तो एक नियत स्थान पर जा कर सभी लोग पहले उस स्थान को पवित्र कर के अपने समस्त शस्त्र एकत्रित कर के रख देते हैं। इसके पश्चात श्रद्धा-पूर्वक शस्त्र-पूजा की जाती है।

आखेट कुछ विशेष अवसरों पर ही किया जाता है। वैसे तो शिकार करना इन का एक प्रकार से दैनिक-क्रम है, परन्तु फिर भी विशेष अवसरों पर किये जाने वाले आखेटों का महत्त्व कुछ और ही है। दैनिक आखेटों तथा विशेष आखेटों में अन्तर केवल इतना ही है, कि दैनिक आखेट तो ये लोग जब भी इच्छा या आवश्यकता हुई, कर लेते हैं, तथा इसमें किसी का साथ आवश्यक नहीं समझा जाता। यह तो इन लोगों का एक ऐसा कार्य है जिसकी सहायता से यह अपनी तथा अपने बच्चों की भूख मिटा लेते हैं। क्योंकि अन्न तो इन की आवश्यकता के अनुसार इस प्रदेश में इतना अधिक पैदा नहीं होता, इसलिये मांस का सहारा लेना ही पड़ता है। फिर भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर जितना अन्न भी पैदा किया जा सकता है, ये लोग करते हैं परन्तु दिन रात के अथक परिश्रम के पश्चात इन्हें भी पर्याप्त अन्न उपलब्ध नहीं हो पाता, इसलिये खरगोश, गिलहरी, हिरन, सूअर, भसा आदि सभी जानवरों का मांस ये लोग खा लेते हैं।

बन्दर का यह लोग बड़ा आदर करते हैं उसे कभी नहीं मारते, चाहें वह कितनी भी हानि क्यों न करे, पर यह उसे कुछ नहीं कहते। इन के विचार में वह इन की उरांव जाति का आदि-नर है, जिस से इन की उत्पत्ति हुई। और इस बात में इनका विश्वास अत्यन्त दृढ़ है।

वैसे तो इस प्रदेश के निवासियों का मुख्य पेशा कृषि ही है, परन्तु उसकी व्यवस्था इतनी दीन है, कि इन्हे जीवन भर बड़े बड़े साहूकारों, तथा जमींदारों का दास बन कर रहना पड़ता है, उनकी दृष्टि तनिक भी तेज होने से इन्हें भूखों मरना पड़ता है। वे लोग इन भोले भाले जीवों पर मन चाहे अत्याचार करते हैं जिससे इन की आर्थिक दशा सदा शोचनीय रहती है, ग़रीबी, अशिक्षा, ने इन के जीवन को बुरी तरह जकड़ रखा है। यह वास्तव में अनोखी बात है, कि जिन भोले भाले लोगों ने बड़ा परिश्रम कर के भयानक जंगलों के स्थान पर हरी भरी खेतियों वाली स्वर्ण धरती बनाई, जिस पर

केवल एक मात्र इन्हीं का अधिकार था, फिर उसे अपनी जागीर समझने वाले तथा उस पर अपना क़ानूनी दावा करने वाले जमींदार कहाँ से पैदा हो गये ?

खोजों से पता चलता है, कि भारत में जब मुग़ल साम्राज्य स्थापित हुआ, उसके पश्चात ही इन लोगों को दासता के बन्धनों में जकड़ डाला गया। भूखे मुग़ल सैनिकों तथा देश के ग़द्दारों को मुग़ल राज्य की स्थापना में सहायता देने के उपलक्ष्य में राज्य को यह साहस हो गया, कि वह सम्पूर्ण भारत-भूमि को मुग़ल जायदाद घोषित कर दें। इस घोषणा की योजना बनाते ही जमींदारियों तथा जागीरों के लोभ में देश के साथ विश्वासघात करके अनेक राष्ट्रीय ग़द्दारों ने मुगलों के पैर इस भारत-भूमि पर दृढ़ कराने में उन्हें बड़ा सहयोग दिया।

जब भारत पर उन के क़दम भली प्रकार जम गये, तो उन्होंने सम्पूर्ण भारत-खण्ड पर अपनी स्वामिता की घोषणा कर दी। इस घोषणा से जनता में असंतोष फैल गया, अनेक स्थानों पर क्रान्ति होने का भय हो उठा। तब राष्ट्र का नमक हराम करने वाले बहुत से कुपूतों ने इसे कठोरता से दबा डालने में मुग़लों का बड़ा साथ दिया। तथा उन्हें दबाये रखने के लिये मुग़ल बादशाहों ने सम्पूर्ण देश को जमींदारियों तथा जागीरों में विभाजित कर के राष्ट्र के दलालों को निहाल कर दिया।

इस विभाजन से मुग़लों को दो लाभ हुए। एक तो यह कि देश की भूमि के विस्तृत प्रबन्ध से उन्हें छुटकारा मिल गया, और दूसरा यह कि सम्पूर्ण भूमि पर मुग़ल अधिकार के साथ ही जमींदारी तथा जागीरों के इनामों से पाप की कमाई खाने वालों का मुँह भी उनकी इच्छा अनुसार भर दिया गया। और फिर तो जमींदारियां तथा जागीरें इनाम में दे डालना मुग़ल राजाओं की एक आदत सी बन बैठी। इस प्रथा का भयानक परिणाम यह हुआ, कि राज्य के विरुद्ध आवाज उठाने वालों के मुँह बुरी तरह कुचल कर ग़रीब किसानों को सदा के लिये बन्दी बना दिया गया। सैकड़ों वर्ष बीत जाने

के पश्चात अब तक उनकी यही दशा रही है। कभी कभी तो ये बेचारे उन्हें अपना एक प्रकार से भगवान भी समझने लगते हैं। अन्नदाता आदि नामों से उन्हें सम्बोधित किया जाता है। परन्तु अब भारत पर मुग़लानी या अन्य कोई विदेशी शासन नहीं, आज भारत का अपना प्रजातन्त्र साम्राज्य स्थापित हो चुका है। अनेक स्थानों पर इन बुरी प्रथाओं का नाश करके कृषक को ही धरती का वास्तविक अधिकारी घोषित कर दिया गया है। शेष स्थानों पर इस के लिये व्यवस्था की जा रही है। और वह दिन दूर नहीं कि यह भी इस दासता से मुक्त हो कर पुन: अपना उत्थान कर सकेंगे। इन लोगों को शिक्षित करने के लिये भी भारत की स्वतन्त्र सरकार प्रयत्न कर रही है।

इस प्रदेश में अधिकतर बिहार राज्य के ब्राह्मण ही जमींदार हैं, जो कि इन ग़रीबों का शोषण करने में बड़े प्रसन्न होते हैं। और जो अपने आप को इन भोले भाले लोगों का अन्न-दाता समझते हैं। पर यदि ये लोग उन की जमीनों को छोड़ दें, और फिर कोई भी उस जमीन में हल चलाने से इन्कार कर दे, तो बहुत शीघ्र ही इन भोले भाले लोगों से भी कहीं अधिक भूख उन लोगों में फैले, क्योंकि ये तो बोझ ढो कर भी पेट की भूख मिटाने के लिये कुछ पा लेंगे, पर उन महानुभावों को, जो कि अपने आप को इन लोगों का अन्न-दाता समझते हैं, दो दाने भी नसीब न होंगे।

वास्तव में इस प्रदेश के लोग बड़े भोले होते हैं। इन लोगों का पहनावा भी बड़ा ही अनोखा तथा नाम मात्र को ही होता है। स्त्री तथा पुरुष दोनों अंगोछे बांधते हैं, इन्हें शेष शरीर नग्न ही रखना अच्छा लगता है। यहां तक कि स्त्रियां भी अपने वक्ष:स्थल को ढकना पसन्द नहीं करतीं। पुरानी तरह के दो चार आभूषण अवश्य पहन लेती हैं। केश या तो खुले ही रहते हैं और या उन्हें साधारण जूड़े के रूप में पीछे की ओर बांध लिया जाता है।

इस प्रदेश की सभी जातियों का रंग तो देखने में सांवला है, परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से यदि देखा जाये, तो यह बिल्कुल भी भयानक प्रतीत नहीं होते। काम करने में इन का यह हाल है, कि भले ही थक कर चूर हो जायें, पर जब तक उसे पूर्ण न कर लें, उसको अधूरा नहीं छोड़ते।

इस प्रदेश के बहुत से लोग यहां के निकटवर्ती नगरों में प्रायः बोझ ढोने का काम करते दिखाई पड़ते हैं, वास्तव में उनकी परिश्रम शीलता देख कर आश्चर्य होता है। बहुत से लोग तो इतने बांके, स्वस्थ तथा चुस्त होते हैं कि दो मन बोझ अपनी नंगी पीठ पर उठा कर २०, २२ मील तक निरन्तर चल सकते हैं।

इन आदिवासियों में परदे की प्रथा नहीं है। विवाह के लिये केवल वर तथा कन्या की भरपूर जवानी ही देखी जाती है। हां, एक बात जो सब से अधिक ध्यान देने योग्य है कि इन लोगों में ऐसी कन्या से कोई विवाह नहीं करता, जिसे वृक्ष पर चढ़ना न आता हो। और यदि ग़लती से ऐसी कन्या से विवाह हो भी जाये, तो बाद में उसे छोड़ दिया जाता है। एक से अधिक विवाह करने का रिवाज भी इन जातियों में प्रचलित है। जिस समय खेतों में बीज बोया जाता है, तो उस समय बीज स्त्री के हाथ से ही धरती में छोड़ा जाना शुभ माना जाता है।

नृत्य तथा गीतों का इन के जीवन में बड़ा महत्त्व है। हालांकि यह दोनों चीज़ें पुरातन ढंग की होती हैं, फिर भी इन में एक ऐसी भावात्मक कला के दर्शन होते हैं, जिन का गुणगान किये बिना नहीं रहा जाता। गीतों में भरे भाव हृदय के टूक भर देते हैं, वैसे यह गीत इन लोगों की अपनी अनोखी भाषा में होते हैं, पर यदि उन की भाषा को जान कर उन गीतों का अवलोकन किया जाये, तो इन के गौरव-पूर्ण अतीत की कल्पना करना बड़ा सरल हो जाता है। इन के गीतों में भावों की कोमलता इतनी अधिक होती है, कि आत्मा उन्मत हो उठती है। और इतना ही नहीं, बल्कि यदि अन्य भाषाओं के साहित्य से इन के साहित्य की तुलना की जाये, तो भेद स्पष्ट

हो जायेगा। नृत्यों का महत्व भी ऐसा ही है। स्त्री पुरुष साथ साथ नृत्य करते हैं।

बच्चों को शिक्षा देने के लिये 'बांगर कुरियार' नामक एक स्थान प्रत्येक गांव में होता है, यहां बच्चों को सामाजिक, तथा व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है, जिसमें कोई भी किताबी विषय नहीं होता। वैसे इन लोगों का एक अपना साहित्य है, परन्तु आज बहुत कम ही पढ़े लिखे लोग इनके बीच रह गये हैं।

यह है, इस प्रदेश के भोले भाले लोगों का अनोखा जीवन। द्राविड़-जाति के यह अवशेष आज भारत की प्राचीन कहानी के अवशेष हैं। इन को कभी भी, किसी ने उठने का अवसर नहीं दिया, और श्रेष्ठ जातियों के दबाव में भी यह अपने आपको उठा न सके। पर आज के स्वतन्त्र भारत में, कोई भी किसी को दबाने का अधिकार नहीं रखता। इसलिये वह दिन दूर नहीं, जब हम इनकी उन्नति को देख कर भूल जायेंगे, कि यह भारत के आदिम-प्राणी हैं।

बेगा प्रदेश के निवासी

बेगा प्रदेश वास्तव में मध्य भारत के दक्षिणी प्रदेश को कहते हैं। बेगा लोगों के अतिरिक्त गोंड जाति के लोगों का भी यहीं वास है। यह दोनों जातियाँ भारत के उन आदि-वासियों के अवशेष हैं, जो आर्य-युग में भी भारत में रहते थे। भील, द्राविड, गोंड आदि सभी जातियाँ उन्हीं प्राचीन भारत-वासियों की संतानें हैं। हजारों वर्ष बीत जाने के पश्चात आज भी ये लोग उतने ही जंगली हैं, जितने प्रारम्भ में थे। बहुत से इतिहासकारों का मत है। कि ये लोग भी भारत के सब से पहले तथा मूलवासी नहीं हैं। परन्तु इन से पहले भी कोई आदि मानव यहाँ वास करता था जो पत्थर के युग के मानव के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु आज वे लोग भारत में नहीं मिलते, हो सकता है, कि वह अन्य आदिम-जातियों तथा आर्यों का सम्पर्क पाकर इतने सभ्य हो गये हों, जिन से पत्थर के युग का नाश हो गया हो। किन्तु यह ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता, अपितु उसके प्रति केवल कल्पना ही की जाती है। पर उसके बाद जो ताम्र-युग आया, उसकी छापें आज भी आसाम प्रदेश की पहाड़ियों तथा दक्षिणी भारत के जंगलों में कहीं कहीं देखने को मिल जाती हैं। बहुत से विद्वानों का मत है, कि उनके विचार में पाषाण-युग का मानव भी यहां का वास्तविक वासी नहीं था, बल्कि इस भारत देश में उस से भी पहले एक नग्न मानव रहा करता था जिसे कि पाषाण-युग के आद-मियों ने इस भूमि से बल पूर्वक निकाल दिया था। वह नग्न मानव ही शायद इस भूमि का वास्तविक वासी हो सकता है। परन्तु यह सारे कथन केवल अनुमान द्वारा ही कहे गये हैं। सत्य क्या है इसे कोई नहीं जानता। भारतीय ग्रन्थ, जिन के बारे में यह बताना आज के मानव के लिये कठिन ही नहीं, बल्कि पूर्ण असम्भव भी है, कि उनकी रचना किस जमाने में की गई, परन्तु इतना तो जगत के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है, कि यह

ग्रन्थ आर्य ही अपने साथ लाये थे। तथा भारत में जिस समय वे आये, उस से भी हजारों वर्ष पहले उनकी रचना हुई थी। जब कई इतिहासकारों ने इस बात को स्वीकार किया है तो उनके लिये यह जान लेना भी आवश्यक है, कि वे ग्रन्थ अपने लेखों से यह सिद्ध करते हैं, कि उनकी रचना कहीं अन्यत्र न होकर भारत के भूमि-पटल पर ही हुई थी। फिर यह कैसे मान लिया जाये, कि आर्यों का जन्म-स्थान यह भारत नहीं था। यदि यहीं का आदि-मानव नग्न था, तो वह भी आर्य ही था, और वह आदि-मानव कितना सभ्य था, इसका प्रमाण वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा अन्य सैंकड़ों हिन्दू-ग्रन्थों का अस्तित्व है जो आज भी सुरक्षित है। इसलिये इन बेगा तथा गोंड जातियों के प्रति भी यह ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता, कि शायद यही भारत के आदि-मानव थे। परन्तु यह उन्हीं लोगों की वास्तविक संतान अवश्य हैं, इतनी बात अवश्य कही जा सकती है।

हालांकि इन लोगों का खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज आर्य वंशजों से बिल्कुल भिन्न है, फिर भी न जाने ये लोग हिन्दू-धर्म के अनुयायी कैसे हो गये। यह आश्चर्य की ही बात है। हो सकता है, कि हजारों वर्षों तक आर्यों के बीच रहने के कारण ही इन लोगों ने हिन्दू-धर्म को अपना लिया हो, तब यदि यह भील, गोंड तथा द्राविड़ आदि जातियों के लोग आर्य नहीं थे, तो फिर ये हिन्दू कैसे हो गये ? हो सकता है, कि प्रारम्भ में इन लोगों के बीच किसी भी धर्म का उदय न हुआ हो, और आर्यों के जोर से दबकर यह जब बनवासी हो गये, तो ऐसी दशा में किसी धर्म को जन्म देना इनकी सामर्थ्य से बाहर हो गया। और जब इस देश पर इस्लामी आक्रमण हुये, और मुसलमान भी इसी भूमि पर बस गये, तो भारत के निवासी होने के कारण उन्होंने भी इन्हें हिन्दू ही समझा। और इसी प्रकार अंग्रेजों ने भी।

और जब स्वामी दयानन्द ने उजड़ती तथा क्षीण होती हुई हिन्दू जाति का उत्थान करने, तथा उसे शक्तिवान बनाने के लिये आर्य-समाज को जन्म दिया। तो वह हिन्दू ही समझे जाने लगे। चूंकि पहले इन लोगों

का अपना कोई धर्म नहीं था। हिन्दू देवताओं की पूजा करना ही इनका एक छोटा सा धर्म साधन बन चुका था, और विदेशी ही नहीं अपितु स्वयं हिन्दू लोग भी इन्हें, हिन्दू-धर्म की ही एक शाखा समझने लगे थे, जिससे इन लोगों को भी यह भ्रम हो गया, कि शायद हम हिन्दू ही हैं, क्योंकि जब दुनियां भी हमें हिन्दू समझती है, तो अवश्य ही हमारे पूर्वज हिन्दू ही होंगे। यही कारण है, कि हिन्दू धर्म इन लोगों के अत्यन्त समीप होने के कारण, इनका अपना धर्म बन गया।

यह बेगा तथा गोंड लोग परस्पर इतनी भिन्न प्रकृतियों के लोग हैं जिन से इन में सामाजिक दृष्टि से एक बहुत बड़ा भेद पाया जाता है। बेगा लोग जहाँ एक उच्च कोटि की जादूगर जाति से सम्बन्ध रखते हैं, वहाँ गोंड जाति के लोग शिकार करने में इतने सिद्ध-हस्त होते हैं, कि जिस पर निशाना बांधा, वह फटका भी नहीं खा पाता कि वहीं ढेर हो जाता है। इनके छोटे छोटे बच्चे हाथ में तीर कमान उठाये घने तथा भयानक जंगलों में निर्भय होकर घूमते रहते हैं। कारण यह है, कि बचपन से ही तीर चलाने की कला में वह इतने निपुण हो जाते है, कि फिर किसी भी भयानक जानवर से उन्हें भय नहीं रहता। तथा वे इस योग्य होते हैं, कि अपनी रक्षा स्वयं अपने आप कर सकें।

इसके विपरीत बेगा लोग भी तीर चलाने की विद्या में काफ़ी सिद्ध-हस्त होते हैं, परन्तु साथ साथ वह उच्च कोटि के जादूगर भी हैं, और वह केवल कहने की ही बातें नहीं। अपितु यह सत्य है कि इनके पास अभी जादूगरी विद्या के ऐसे आधार मौजूद हैं, जिन पर विश्वास करना पड़ता है। और जिन के आश्चर्य-जनक दृश्य अनेक बार इस प्रदेश में देखने को मिले हैं, और आज भी मिलते हैं। विंध्याचल तथा मध्य-भारत के प्रदेशों में बसने वाले सभ्य लोग भी इन के जादू में अपनी पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। यहाँ तक कि यदि नगर में कोई आदमी अधिक बीमार पड़ जाये और उसकी दशा को डाक्टर भी संभाल पाने में असमर्थ हो जायें तो इन्हें ही बुला कर अंक-

मन्त्रों का इलाज कराया जाता है। और यह देखने में अनेक बार आया है, कि इनकी इस जादू भरी चिकित्सा से लोग अच्छे भी हो जाते हैं। इन लोगों को चाहे कोई भी बीमारी क्यों न हो जाये पर ये लोग डाक्टरों, हकीमों के पास कभी नहीं जाते। जन्त्रों-मन्त्रों के बल से ही अपना इलाज स्वयं कर लेते हैं, और अच्छे भी हो जाते हैं। वैसे इन लोगों को जड़ी बूटियों का भी इतना ज्ञान है, कि यदि सर्प आदि कोई विषैला जन्तु इन्हें काट खाये, तो यह तुरन्त उसे लगा कर उसके विष का नाश कर डालते हैं।

कई बार तो यहाँ तक देखने में आया है, कि बरसते हुये प्रखण्ड मेघों को केवल मन्त्रों के बल से ही इन्होंने चीर डाला। आते हुये तूफ़ानों को रोक दिया। घने तथा भयानक जंगलों में अपने मन्त्रों के प्रताप से ही ज्वाला भड़का दी, और उन्हें भस्म कर डाला। सब से आश्चर्य की बात तो यह है, कि शेर चीतों जैसे जंगली जानवरों को भी अपने मन्त्रों से ये लोग इस प्रकार बेबस कर देते हैं, कि वह इनके बराबर से गुजर जाते हैं, परन्तु इनकी ओर झाँकते तक नहीं। इनके बच्चों को प्रायः शेरों के साथ खेलते हुए देखा गया है। बहुत से लोगों का विचार है, कि इस विद्या में यह लोग इतने निपुण है, कि यदि चाहें, तो सारे जंगली जानवरों के बल पर ये लोग अन्य प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यह बात जंचती नहीं।

बहुत से लोगों का कहना है, कि पहले ये लोग, कुल्हाड़ी तथा फावड़ों से खेती करते थे, परन्तु जिस समय सम्पूर्ण भारत पर अंग्रेजों के पाँव जम गये, और १८५७ की स्वतन्त्रता क्रान्ति की असफलता पर इनकी जड़ें और भी अधिक मजबूत हो गई और वे भारतीय सम्पत्ति को एक तरह से अपनी पैत्रिक जागीर समझने लगे, तो उन्होंने इन आदिवासियों के फावड़ा तथा कुल्हाड़ी से खेती करने वाले ढंग पर पाबन्दी लगा दी। आज्ञा भंग करने वालों को कड़े से कड़े दण्ड दिये जाने लगे, जिस से इनके हृदय पर एक भयंकर चोट लगी, और अत्याचार ने सादगी पर विजय पाई। जमाने की चाल को देखते हुये, अंग्रेजों ने उनकी यह पुरानी रीति छुड़ाने के लिये जो कुछ

भी किया, उसका उद्देश्य यह नहीं था, कि वे इन लोगों की पुरानी आदतों को छुड़ा कर इन्हें सभ्य तथा शिक्षित बनाना चाहते थे, बल्कि वह तो अपने लाभ हेतु ही उनके साथ यह कठोर व्यवहार करने पर उतारू हो गये थे। कारण यह था, कि यह जातियां बहुत ही प्राचीन विचारों के लोगों से परिपूर्ण थीं, तथा इनका खेती करने का ढंग भी बड़ा अनोखा था।

हल आदि आर्य औजारों से खेती करना यह लोग पाप समझते थे। इनका विचार था, कि हम चूंकि मिट्टी से पैदा हुये हैं, इसलिये धरती माता के पुत्र हैं। हल के नोकीले फालों से हम अपनी माता की छाती नहीं चीर सकते। ऐसा करने से हम महा पापी हो जायेंगे, तथा हमें नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा। हमें इस पाप का दण्ड बड़ा भयानक भोगना होगा। यही कारण था, कि ये लोग हल आदि यन्त्रों के बजाये कुल्हाड़ी तथा फावड़ों से खेती करते थे।

आप सोचते होंगे, कि कुल्हाड़ों तथा फावड़ों से भी तो धरती को खोदा ही जाता होगा! परन्तु आपको आश्चर्य होगा, कि ये लोग खेती भी इस प्रकार करते थे, कि धरती पर तनिक भी चोट नहीं लगने पाये। इनका ढंग इस प्रकार था, कि यह लोग कुल्हाड़ों से घने जंगलों को काट कर गिरा देते थे, जब यह कटी हुई वनस्पति धूप तथा हवा में पड़े पड़े, सूख जाती थी, तो ये लोग उसमें आग लगा देते थे, जिससे महीनों तक जंगलों में आग ही लगी रहती थी। और कभी कभी तो यह अग्नि इतना भयानक रूप धारण कर लेती थी, कि आस पास के नगरों को भी भय उत्पन्न हो जाता था। फिर जब वर्षा की ऋतु आती तब कहीं जाकर यह ज्वाला शांत हो पाती थी।

इस भयंकर अग्नि काण्ड से जो राख धरती पर जम जाती थी उसी राख को फावड़ों से छील छील कर यह लोग बीज बोया करते थे। यही इनके खेती करने का एक मात्र ढंग था। परन्तु इस प्रकार यह एक ही स्थान पर केवल दो या तीन वर्ष तक खेती कर पाते थे। और वर्षा के कारण

जब यह राख बह जाती थी तब यह किसी अन्य वन को उसी प्रकार काट कर अपने लिये भस्म की धरती उपलब्ध करने के विचार से उसे अग्निदेव के हाथों सौंप देते थे।

इस प्रकार इन बेगा, गोंड आदि आदिम-जातियों ने भारतीय अमूल्य वनस्पति का नाश कर डाला। अंग्रेजों ने जब यह देखा, तो उन्होंने क़ानूनी तौर पर उनकी इस स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया। वनों का काटना, या उनमें आग लगाना सरकारी तौर पर अपराध घोषित कर दिया गया।

इस तरह इन के परम्परा से चले आने वाले पुण्य पर प्रतिबन्ध लगा कर इन्हें पाप के गड्ढों में ढकेलने वाले विचारों ने इन के मानस पर एक बहुत बड़ा आघात किया। इन की आत्मा हाहाकार कर उठी। परन्तु ज्यों ज्यों आने वाली नसलों के बीच इस बात का प्रचार किया गया, कि वन तो मनुष्य को ईश्वर की ओर से दी गई एक अमूल्य सम्पत्ति है, इस का नाश करना अपनी सम्पत्ति का नाश करना है तथा अपने आप को ग़रीब बना कर, अपनी आने वाली नसलों को भूखों मारना है। धरती की छाती कुरेद कर उस से अन्न प्राप्त करना उसी प्रकार उचित है, जिस प्रकार बालक माँ की छाती को टटोल कर दूध पीने का अधिकार रखता है। यह पाप नहीं है। छाती को टटोल कर दूध पीने का अधिकार प्रत्येक माता के लाल को है। शायद तब कहीं जा कर ये लोग कुछ समझ पाये। परन्तु फिर भी इनकी आत्मा कभी कभी अशांति का आभास करने ही लगती है।

आज दुःख, गरीबी, तथा क्लेश में अपने आप को घिरा देख कर बहुत से बेगा लोगों की यह धारणा बन चुकी है कि हम ने धरती माता की छाती को हल की नोक से फाड़ कर जो अपराध किया है, उसी का दण्ड आज हमें मिल रहा है, कि हम, भूखे हैं, हम ग़रीब हैं, हम हर समय दुःखों में घिरे रहते हैं। हमें शांति नहीं। चारों ओर मुसीबत ही दिखाई देती है।

परन्तु अब अंग्रेज नहीं रहे जो उन पर अत्याचार करें। अब भारत स्वतन्त्र है। और ये पिछड़े हुए लोग भी इस देश पर अपना उतना ही अधिकार

रखते हैं, जितना कि एक सभ्य नागरिक। अब इन लोगों की गरीबी, दुःख तथा दर्द को दूर करने का बीड़ा हमारी सरकार ने उठाया है। शिक्षा के बल पर इन पिछड़ी हुई जातियों के एक एक बच्चे को सभ्य बनाने की प्रतिज्ञा की गई है। इस प्रदेश के अनेक भागों में सरकार ने पाठशालाएँ भी खोल दी हैं। जिन में शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ़त कर दी गई है।

बेगा प्रदेश की इन जातियों के लोगों का वर्ण अधिकतर साँवला ही देखा गया है, परन्तु कहीं कहीं, कुछ श्वेत वर्ण के लोग भी मिलते हैं। ये लोग भी संसार की अन्य आदिम-जातियों की ही भाँति नग्न अवस्था में रहते हैं। केवल एक धोती हो कमर में लपेटने के आदी हैं जो कि जाँघों तक ऊँची होती है। स्त्रियाँ ऊँची ऊँची धोतियाँ पहनती हैं। जम्पर तथा बलाऊज आदि पहनने में उन्हें बड़ा आलस्य प्रतीत होता है। इसलिये शरीर का शेष भाग खुला ही रहता है। हाँ, छाती को ढकने के लिये धोती के आँचल का उपयोग अवश्य कर लेती हैं।

देवी देवताओं की पूजा का इन लोगों में विशेष प्रचलन है। ये लोग उन में इतना अधिक विश्वास रखते हैं, कि उन के सामने नास्तिकता की बात करने का साहस किसी को नहीं होता। इसके अतिरिक्त नदी, नाले, तालाब, पोखर, पर्वत तथा भूत व्याधि आदि की उपासना करना भी इन लोगों में प्रायः देखा गया है। हर एक गाँव के निकट एक देवी का स्थान होता है, जिसकी पूजा ये लोग बड़ी श्रद्धा पूर्वक करते हैं। तथा इस देवी को ये लोग अपनी भाषा में 'खेरवा' कहते हैं। इन लोगों का विश्वास है, कि यह देवी गाँव पर आने वाले दुःख सुख आदि की एक मात्र स्वामिनी होती है। जब गाँव पर कोई कष्ट आता है, तो लोग समझते हैं, कि अब गाँव की देवी हम लोगों से रुष्ट है, इसलिये बड़े यत्न पूर्वक उसको पूजन द्वारा मनाया जाता है। पूजन के लिये यह अपने निजी मन्त्रों तथा लोक-गीतों का उपयोग करते हैं। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये किसी शास्त्र पाठी अथवा ब्राह्मण आदि की उपस्थिति आवश्यक नहीं होती।

'राम नवमी' का त्योहार ही इन लोगों का मुख्य त्योहार है, जिसे यह लोग बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं। इस दिन एक बड़ा भारी जलूस निकाला जाता है, जिसमें स्त्री पुरुष सभी बड़े हर्ष के साथ सम्मिलित होते हैं। स्त्रियां हाथों में मिट्टी के बर्तनों में बोये हुये गेहूं तथा जौ के आठ दस दिन की आयु के पौधे उठाये गीत गाती हुई चलती हैं। स्त्रियों के पीछे भक्त लोग चलते हैं, जो नियत स्थान पर पहुंच कर खेला करते हैं, और बेहोश हो जाते हैं। इन भक्तों को यहां के लोग बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। लोहे की मोटी मोटी जंजीरें आग में तपाई जाती हैं तथा गरम हो जाने पर उन्हें दूहा जाता है। दूहते समय सब से आश्चर्यजनक चीज जो देखने को मिलती है, वह यह है, कि जलती हुई जंजीर को दूहने से भी इनके हाथों में कोई असर नहीं होता। यह जंजीर केवल वही आदमी दूहता है, जो कि देवी का भक्त हो। कितनी अनोखी बात है, कि गरम तथा जलती हुई जंजीरों के स्पर्श से भी इन के हाथ नहीं जल पाते। इन लोगों का कथन है, कि ऐसा करते हुए, कोई दवाई आदि हाथों में नहीं लगाई जाती, बल्कि यह सब मंत्रों का ही प्रभाव है।

हालांकि यह लोग अपने सभी क्रिया-कर्म, अपने आप ही बिना किसी पुजारी अथवा ब्राह्मण की सहायता के ही सम्पन्न कर लेते हैं, परन्तु फिर भी ब्राह्मण लोगों के प्रति इन के मन में सदा श्रद्धा बनी रहती है। ब्राह्मणों को यह लोग जगत की श्रेष्ठ जाति मानते हैं।

नृत्य कला में भी ये लोग पूर्ण रूप से निपुण होते हैं। वैसे इन लोगों के नृत्यों में कोई विशेष कलात्मक शैली नहीं पाई जाती, परन्तु फिर भी ये लोग उस से इतना प्रेम रखते हैं, कि नाचते नाचते अपने आप को भूल जाते हैं। अधिकतर पंक्तियों में खड़े हो कर नाचने का ही रिवाज है। स्त्रियां भी इस नृत्य में पुरुषों के साथ ही भाग लेती हैं। स्त्रियां तथा पुरुष अपनी पंक्तियां बना कर आमने सामने हाथों में हाथ डाले खड़े हो जाते हैं। तथा पखावज पर चोट पड़ते ही नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। नृत्य में ये लोग

आगे को चलते हुये झुकते हैं तथा पीछे को हटते समय फिर सीधे हो जाते हैं। स्त्रियां अपने पैरों में घुंघरु बांधे रहती हैं। तथा एड़ियों को धरती से बजा कर इस प्रकार चोट देती हैं। कि वातावरण एक आकर्षक ताल की ध्वनि से झूम उठता है। यही इन लोगों के सरल तथा ऐश्वर्य-रहित जीवन का एक मात्र मनोरंजन है, जिसमें कुछ समय के लिये इन की चिन्तायें दूर भाग जाती हैं।

धूप, वर्षा आदि से अपनी रक्षा करने के लिये ये लोग एक प्रकार की बांस की बनी हुई छतरी का उपयोग करते हैं। तथा यह इस तरह बनी होती है, कि वर्षा की एक भी बूंद इस में से छन कर शरीर पर नहीं गिर सकती। और न ही उसे हाथों में हर समय उठाये फिरने का ही कष्ट करना पड़ता है। उस के मध्य में एक प्रकार की टोपी सी होती है, जो सिर पर पहन ली जाती है। परन्तु इसका उपयोग यही लोग कर सकते हैं भारत के अन्य सभ्य नागरिकों के बस का यह काम नहीं। इस छतरी को यह लोग 'खोमरी' कहते हैं।

आदिवासी होने के कारण ये लोग मांस खाने में संकोच नहीं करते परन्तु यह इनका मुख्य भोजन नहीं है। सब से अधिक प्रिय भोजन इनका कन्द-मूल फल हैं। फलों के आगे यह लोग दूध-दही आदि को भी इतना अधिक महत्व नहीं देते। इसका यह अर्थ नहीं, कि यह लोग अन्न का भोजन करते ही नहीं। अपितु यह तो उनकी रुचि को दृष्टि में रखते हुये कहा या है। भला बिना अन्न के कोई भी मानव अपना निर्वाह कैसे कर सकता है।

इस प्रदेश के लोग जो मैदानी क्षेत्रों के आस-पास रहते हैं ये अधिकतर मजदूरी करने का कार्य करते हैं। क्योंकि इन क्षेत्रों में तेंदू के वृक्षों की भरमार है। जिसके पत्ते बीड़ी बनाने के काम आते हैं। ठेकेदार लोग सरकार से इन जंगलों को ठेके पर ले लेते हैं, तथा इन लोगों के द्वारा ही इन वृक्षों के पत्ते तुड़वाया करते हैं। इन की अपेक्षा सस्ते मजदूर ठेकेदारों को

और कहीं नहीं मिलते, इसलिये ठेकेदारों को भी इन से काम लेने में कोई आपत्ति नहीं होती और उन्हें लाभ भी खूब रहता है। बहुत से बेगा तथा गोंड लोगों का तो यह पत्ते तोड़ने का काम अब एक प्रकार से जातीय पेशा बन चुका है।

प्रायः ये लोग अशिक्षित भोले भाले, तथा ग़रीब होते हैं। बहुत से लोग तो इन जातियों में ऐसे मिलेंगे जो आज के उन्नतिशील युग से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वे नहीं जानते कि रेल, जहाज तथा मोटर, आदि ये सब क्या हैं।

परन्तु अब सरकार ने इन्हें सभ्य-युग के बराबर ला कर बिठा देने का निश्चय कर लिया है। जगह जगह शिक्षा देने के लिये स्कूल खोले जा रहे हैं। रेलें, मोटर, जहाज, रेडियो तथा बिजली के उपयोग इन्हें बताये जा रहे हैं। इन के रहन-सहन में सभ्यता की नींव रखी जा रही है। कई नये ग्राम भी इन आदिवासियों के लिये बनाने की तजवीजें सोची जा रही हैं। और वह समय अब शीघ्र ही आने वाला है जब ये लोग अपनी ग़रीबी तथा अपने दुःख सुखादि के क्लेश-युक्त जीवन से मुक्ति पा कर हमारे साथ मिल बैठेंगे। हमारी कामना है, कि हमारा यह स्वप्न सत्य सिद्ध हो।

अन्देमान द्वीप-समूह के निवासी

अन्देमान भारत के दक्षिण-पूर्व में स्थित खाड़ी-बंगाल के बीच अनेक छोटे छोटे द्वीपों का एक समूह है। वास्तव में यह द्वीप-समूह एक अत्यन्त रमणीक स्थल का अनुभव कराते हैं, और केवल इतना ही नहीं, अपितु इनकी गोद में प्राकृतिक धन के इतने बहुमूल्य कोष छिपे हैं, जिनका यदि ठीक उपयोग किया जाये तो यह द्वीप किसी प्रकार भी एक स्वर्ग से कम नहीं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, बल्कि संसार के उन विद्वानों ने, जिन्होंने कभी इस भूमि की यात्रा की है, मुक्त कण्ठ से इन द्वीपों की सराहना की है। जो लोग एकान्त वास तथा प्रकृति की गोद में रहना अधिक पसन्द करते हैं, उनके लिये तो यही भूमि सर्व-गुण सम्पन्न स्थान है। विशेष कर नव-विवाहित जोड़ों के लिये, जो विवाह के पश्चात कुछ दिन किसी एकान्त तथा शांति-पूर्ण स्थान पर बिताना चाहते हैं, यह स्थान प्रत्येक दृष्टि से उपयुक्त है।

इन द्वीपों में जाने कितनी नसलों के लोग रहते हैं। हर धर्म तथा हर रुचि के नारी पुरुष यहाँ देखने को मिलते हैं, और जाने कितने प्रकार की भाषाएं यहाँ बोली जाती हैं। इसका यह मतलब नहीं, कि यहाँ के लोग अत्यन्त संकुचित ढंग के हैं, अपितु यहाँ की जन-संख्या इतनी कम है, कि यदि सभी द्वीपों के लोगों की गिनती की जाये, तो बीस बाईस हज़ार से अधिक संख्या उनकी नहीं है। इस संख्या में यहाँ के आदिवासी भी शामिल हैं, जो कि बहुत ही कम हैं।

इस से पूर्व, कि अन्देमान द्वीप-समूह के लोगों के बारे में कुछ कहा जाये, इस भूमि-खण्ड की भौगोलिक स्थिति तथा यहाँ का कुछ इतिहास जान लेना बड़ा आवश्यक है।

कलकत्ता नगर से इस द्वीप समूह की दूरी ८०० मील तथा मद्रास नगर से लगभग ७६० मील है। बर्मा की राजधानी रंगून इसके बहुत निकट है और जिसकी अधिक से अधिक दूरी लगभग साढ़े तीन सौ मील है।

वैसे तो अन्देमान पाँच बड़े द्वीपों का समूह माना जाता है, जिनके नाम उत्तरी-अन्देमान, मध्य-अन्देमान, दक्षिणी-अन्देमान, रिटलैण्ड तथा बारातुंग हैं, परन्तु आम तौर से इन द्वीपों को तीन भागों में ही विभाजित किया गया है, जैसे उत्तरी, मध्य तथा दक्षिणी-अन्देमान। इनके अतिरिक्त अन्य भी कई छोटे छोटे द्वीप इस में शामिल हैं।

पोर्ट-ब्लेयर, एलफ़िन्स्टन, कारनिवास, वानिगटन आदि यहाँ की विशेष बन्दरगाहें हैं, परन्तु पोर्टब्लेयर का महत्व इन सब में अधिक माना गया है।

कई लोगों का विचार है, कि जलवायु की दृष्टि से अन्देमान के टापू रहने के योग्य नहीं, क्योंकि इनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पर यह केवल उनका भ्रम है। हाँ, इतना कहा जा सकता है, कि भूमध्य-रेखा के निकट होने के कारण ये गरम हैं तथा इनमें नमी का अभाव है, परन्तु इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, वैज्ञानिक विशेषज्ञों ने इस कथन की पुष्टि की है, और इस बात को सिद्ध भी किया है, कि यहाँ के जलवायु का स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। वर्षा इन द्वीपों में खूब होती है, जिसका वार्षिक माप लगभग ३५ इंच है। इसलिये यहाँ की भूमि खेती के लिये सर्वथा योग्य है। वैसे इन द्वीपों का काफ़ी भाग पहाड़ी है, परन्तु खेती योग्य भूमि भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध की जा सकती है। मनुष्य के अभाव से उसे अभी इस योग्य तो नहीं बनाया जा सका, पर यदि आवश्यकता हो तो यहाँ इतनी भूमि है, जो तीन लाख व्यक्तियों के बड़े से बड़े परिवारों का गुज़ारा आसानी से चल सकता है।

जहाँ तक इस द्वीप-समूह के इतिहास का सम्बन्ध है उसके प्रति अधिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि काफ़ी खोज के पश्चात भी यहाँ का प्राचीन तिहास अभी कोई मालूम न कर सका। इसका एक कारण है, कि यहाँ

ज़मीन, समुद्र, आकाश तथा यहां के आदिवासियों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा अवशेष नहीं दिखाई पड़ता, जिसको आधार मान कर उसके बारे में कोई निश्चयात्मक बात कही जा सके। इसलिये यह कहना ठीक ही होगा कि पुरातन युग में यह द्वीप मानव-शून्य ही रहे होंगे। जो लोग यहां के वास्तविक वासी कहे जाते हैं, उनके बारे में यह बिल्कुल पता नहीं चलता, कि वे कब तथा कैसे इन द्वीपों में पहुँचे ? उनकी जाति अथवा धर्म क्या था ? इस बारे में इतिहासकारों के जो अनुमान हैं, वह भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहे गये। वैसे उन का विचार है, कि यह लोग सम्भवतः दक्षिणी-चीन के आदिवासी थे। जाने किन परिस्थितियों वश इन्हें अपना देश छोड़ना पड़ा।

इनके देशान्तर्गमन के बारे में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कोई कहता है, कि ये लोग दक्षिणी-चीन में बसने वाले किन्हीं आदिवासियों के व्यापारी-वर्ग से सम्बन्धित थे। इनका व्यापार समय के अनुसार उस समय काफी उन्नतिशील होगा, तथा ये लोग समुद्र के रास्ते भी व्यापार करते होंगे। हो सकता है, कि उन्हीं व्यापारी लोगों को समुद्र यात्रा के समय किसी ऐसी प्राकृतिक घटना का शिकार होना पड़ा हो, जिससे इनकी नौकायें आदि नष्ट-भ्रष्ट हो गई हों, और उनमें से कुछ ने इस द्वीप पर पहुँच कर अपने प्राणों की रक्षा की हो, और फिर यही इनका एक मात्र देश बन गया हो। क्योंकि यहां से निकल कर हजारों मील दूर अपनी मातृ-भूमि में पहुँचने के साधन जुटाना इनके लिये यहां असम्भव हो गया होगा। आवश्यकता के साधनों के अभाव ने इन्हें विवश कर दिया होगा, कि ये लोग अपना आगे का जीवन आदिम-जाति के रूप में व्यतीत करें और किसी प्रकार अपने जीवन की रक्षा करें।

कुछ विद्वानों का विचार है, कि ये लोग दक्षिणी चीन के आदिवासी तो थे, परन्तु हो सकता है, कि संसार की किसी श्रेष्ठ या सभ्य जाति ने इन्हें इनकी मातृ-भूमि से निकाल दिया हो और फिर अन्य किसी स्थान पर भी दूसरी जातियों ने इन्हें न टिकने दिया हो। इस प्रकार यह निरन्तर अपने

लिये कोई सुरक्षित स्थान ढूंढते हुये अनेक दिशाओं को चल दिये हों, और उन्हीं में से कुछ समुद्र की यात्रा पर चल पड़े हों, और यहां आ कर बस गये हों।

क्योंकि इस से पूर्व तो इस द्वीप के बारे में किसी को कुछ पता न था। संसार में इसका नाम तक न था। कोई न जानता था, कि खाड़ी बंगाल की नील-वर्ण गोद में इस टापू का भी अस्तित्व है। वैसे इस का उल्लेख आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व के ग्रन्थों में कहीं कहीं मिलता है। परन्तु यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह वही टापू है या कोई दूसरा, इस बारे में अभी खोज जारी है।

विद्वानों का मत है कि आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व जब भारतीय राजाओं ने अपने देश की संस्कृति तथा धर्म का भारत से बाहर प्रचार करने के उद्देश्य से, विदेशों को प्रस्थान किया और वहां अपनी नौ-आबादियां स्थापित कीं, तब समुद्र के मार्गों से भी गये। हिन्देशिया आदि द्वीपों के लिये उन्होंने समुद्र द्वारा ही प्रस्थान किया, और तब सम्भवत: उन्हें इन द्वीपों में भी ठहरना पड़ा था। परन्तु आश्चर्य की बात है, कि संसार के अन्य पिछड़े हुये देशों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रचार करने के लिये जाने वाले भारतीयों ने यहां के पिछड़े हुये मानव में सभ्यता का जीवन फूंकने हेतु का तनिक भी प्रयास नहीं किया। एक बार ही नहीं, अनेक बार वे यहां ठहरे, पर न जाने उन्होंने इनके जीवन को सभ्य बनाने का विचार क्यों न किया?

यहां कोई भी ऐसा प्राचीन अवशेष देखने को नहीं मिलता, जिस से यह ज्ञात हो पाता, कि उन्होंने इसके लिए प्रयास तो किया था, परन्तु परि-स्थितियों ने उसे सजीव होने का अवसर नहीं दिया और वह मिट गई।

न तो यहां कोई प्रचीन मन्दिर देखने को मिलता है और न कोई अन्य स्रोत यहां प्राप्त हुआ है, जिस से कि यहां की प्राचीन कहानी के प्रति कुछ थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त की जा सकती। यहां तक कि इन के

रहन-सहन, खान-पान, काम-धन्धा आदि विषयों में भी उसकी कोई झलक दीख नहीं पड़ती ।

अब प्रश्न उठता है, कि ऐसा क्यों हुआ ? क्या इसलिये कि वहां पर बसने वाले लोग बहुत कम-संख्या में थे ? और क्या इसलिये कि यहां पर ठहरने वाले प्रचारकों ने इन आदिवासियों को घृणा की दृष्टि से देखा और इसलिये उनका उपहास कर दिया ?

परन्तु यह दोनों बातें सत्य नहीं हो सकतीं, क्योंकि इस कथन में वास्तविकता का भास नहीं हो पाता । पहली चीज तो यह है, कि यदि उन की आबादी बहुत ही कम थी, जैसे सौ, दो सौ, या चार सौ, तो ऐसी अवस्था में तो उन लोगों को सजीव करने के लिये अधिक यत्न भी नहीं करने पड़ते, क्योंकि पिछड़े हुये लोग तो सदा निहारा करते हैं, कि वे अपने उस नारकीय जीवन से शीघ्रातिशीघ्र निकलें और सभ्य बनें ।

इन आदिवासियों को भी यदि कोई गले लगाता, तो वे अवश्य ही उनका स्वागत करते, और उस संस्कृति के अनुयायी हो कर अपने आप को सभ्य बना सकते । कई इतिहासकारों का ऐसा मत है, कि उन्हें किसी ने गले नहीं लगाया । दूसरों को देख कर भी वे अशिक्षा वश अपने आप को उठा पाने के साधन नहीं जुटा पाये । इस प्रकार वे पिछड़े तो थे ही, तथा आने वाले समय ने जब उनकी कोई परवाह न की तो वे पिछड़ते ही चले गये और अन्त में इतने अधिक पीछे रह गये, कि समय उन से अरबों कोस आगे निकल गया ।

कुछ इतिहासकारों का मत है, कि वे इतने अधिक असभ्य थे, जो उन्हों ने सभ्यता के प्रकाश को स्वीकार ही नहीं किया, और अंधेरे में ही रहना उन्हें भला लगा । आने वाले प्रत्येक प्रकाश को उन्हों ने अनादर की दृष्टि से देखा, और इसलिए वे पीछे रह गये । इन उंगलियों पर गिने जाने वाले आदिम-मनुष्यों के लिये समय ने अधिक प्रतीक्षा नहीं की, और वह इन से दूर हो कर आगे निकल गया । क्योंकि आगे एक और विशाल

आदिम-मानव असभ्यता के अंधकार में पड़ा छटपटा रहा था। उसे एक प्रकाश की आवश्यकता थी, और जब बढ़ता बढ़ता यह प्रकाश उनके निकट पहुँचा, तो उनकी दुनियाँ में उजाला हो गया। उस उजाले में जब उन्हों ने अपनी दीन अवस्था को देखा तो वे व्याकुल होकर अपना उद्धार करने को प्रकाश की शरण में आ गये। उस प्रकाश की शरण में,जो उनके अंधकार-पूर्ण जीवन में उजाला ले कर आया था। उनके सुप्त हृदय के लिये जागृति का सन्देश ले कर आया था। उनकी मरती हुई आत्मा को जीवन-दान देने आया था।

अन्देमान निवासियों ने उसका आदर नहीं किया, इसलिये वे पीछे रह गये, और यह ठीक है, कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। निरन्तर बढ़ते जाना ही उसका स्वभाव है इसलिये वह बढ़ता जाता है। उसके साथ बहने वाले गुण भी, यदि उन्हें कोई न तोड़े, तो उसके साथ ही चिमटे चले जाते हैं।

यह आदिवासी भी पिछड़ गये, और यहाँ तक अंधेरे में चले गये कि बिल्कुल हब्शी हो गये। इन का जीवन बिल्कुल जगली हो गया। ये लोग अपने पुरातन काल को भी भूल गये। इनका कोई धर्म न रहा। संसार की समस्त देन पर से इनका विश्वास उठ गया। और एक समय ऐसा आया कि ये लोग संसार के सब से पहले मानव की तरह पशु बन गये। सारा दिन पापी पेट की आग बुझाना ही इनका एक मात्र धन्धा रह गया। इनका कोई समाज न रहा और ये लोग पथ-भ्रष्ट हो कर पूर्ण-रूप से असभ्य हो गये।

समय समय पर सभ्य जातियाँ यहाँ आती रहीं हैं, ऐसा इतिहासकारों का मत है। पहले हिन्दू धर्म के सभ्य लोग यहाँ आये, फिर बौद्ध, इस्लाम और इसाई। इन लोगों ने बड़ी चेष्टा की कि यह किसी न किसी धर्म की शरण लें, परन्तु ऐसा न हो सका।

हिन्दू काल के पश्चात जब बौद्ध-युग आया तो उसने असीम उन्नति की, और वह भारत ही नहीं, अपितु इस से बाहर के एशियाई देशों में भी बड़ी तेजी से फैलता चला गया। बौद्ध-धर्म के प्रचारकों ने इस द्वीप की

अनेक बार यात्रा की, क्योंकि अन्य देशों को आते जाते समय वे लोग इस द्वीप में विश्राम अवश्य लिया करते थे, और यह द्वीप उनके जहाजों का पड़ाव काफ़ी समय तक रहा, इस से अधिक कुछ नहीं।

इतना कुछ होते हुये भी दुनियाँ ही नहीं, अपितु स्वयं भारत के आम लोग भी इस द्वीप के अस्तित्व के प्रति पूर्ण अनभिज्ञ ही रहे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में इस के प्रति लोगों को कुछ कुछ जानकारी प्राप्त हुई थी। इसके पश्चात जब अंगरेज़ों के भाग्य का सितारा उदय हुआ, और वे बड़े वेग से अपने साम्राज्य को बढ़ाने की चेष्टा करने लगे, तो सन् १७८९ में अंग्रेजी नौ-सेना के प्रसिद्ध कप्तान मिस्टर "आर्चीबोल्ड ब्लेयर" ने इस द्वीप-समूह को अपने अधिपत्य में ले लिया और यहाँ एक नवीन नगर की स्थापना की। मिस्टर ब्लेयर को वास्तव में यह स्थान बड़ा ही पसन्द आया था और इतना ही नहीं, बलिक उसके विचार में साम्राज्य की रक्षा के लिये भी यह एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त जल-यानों को कोयला आदि प्राप्त कराने के लिये भी उसने इसे एक बड़े काम का अड्डा विचार किया।

इसके पश्चात ही अन्देमान द्वीपों की वास्तविक तथा उन्नति-शील कहानी प्रारम्भ होती है। सब से पहले तथा नवीन नगर का जन्म ही द्वीपों की काया पलट करने का सब से पहला दृढ़ प्रयास था, जिस से यहाँ का उन्नति-शील इतिहास शुरू होता है। किन्तु अभी बहुत कुछ होने को शेष था।

कप्तान ब्लेयर ने जिस नगर को बसाने की योजना बनाई थी उसे अभी साहस-पूर्ण उन्नति नहीं मिली थी, बलिक वह केवल एक छोटी बस्ती अर्थात् गाँव के रूप में ही रह गया था। सन् १८५८ में अंग्रेजों के क़दम भारत खण्ड पर अच्छी तरह जमने लगे, तब अंग्रेजी सरकार को इस द्वीप का म त्व विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुआ। उस दिन यह सोचा गया कि कप्तान ब्लेयर क्यों इस उजाड़ तथा छोटे से द्वीप को पूरी तरह बसाने पर जोर देता था?

समय ने इस द्वीप को नव-जीवन का सन्देश दिया। और उसी समय वहाँ पहले नींव रखे गाये ग्राम को आबाद करने का कार्य-क्रम प्रारम्भ हो गया। उचित प्रयास ने थोड़े ही दिनों में उस गाँव-रूपी आबादी को एक छोटे से नगर का रूप दे दिया। और अपने स्वर्गीय कप्तान की स्मृति जीवित रखने के लिये भारत की अंग्रेज-सरकार ने इसे पोर्ट-ब्लेयर के नाम से अन्दे-मान द्वीप की राजधानी घोषित कर दिया। कई अंग्रेज यहाँ आकर आबाद हो गये। और इस शांति-पूर्ण द्वीप में यह नगर अपनी अनुपम शोभा से आने जाने वाले समुद्री यात्रियों के नेत्र चका-चौंध करने लगा।

सन् १८५७ में जब भारतीय जनता ने अंग्रेजों के अत्याचारों से तंग आकर इनके विरुद्ध क्रांति की जंग लड़ी और हार गई, तब उनके नेताओं को क़ैद करके इस द्वीप की जेल में लाया गया। (इस कार्य के लिये अंग्रेजी सरकार ने इस द्वीप में एक विशाल जेल तैयार की थी, जो कि भारत के इतिहास में अपना एक महत्व-पूर्ण स्थान रखती है।) इस जेल में केवल उन राजनैतिक सैनिक नेताओं को बन्द किया गया था, जिन्होंने इस क्रांति में विशाल-भारत को अंग्रेजों के हाथों से स्वतन्त्र कराने की प्रतिज्ञा की थी। जेल में उन सैनिक क़ैदियों पर बड़े बड़े अत्याचार ढाये गये, जिस से पीड़ित होकर अनेक देश-भक्तों ने यहाँ अपने प्राण दे दिये।

इस क्रांति की समाप्ति के पश्चात भारत के आयु-पर्यन्त क़ैद किये जाने वाले क़ैदियों को भी यहीं भेजा जाने लगा, और फिर एक समय ऐसा आया कि लोग इसे "काला पानी" के नाम से याद करने लगे।

सन् १८५७ के राजनैतिक बन्दियों पर होने वाले अत्याचारों ने भारत के सभी लोगों के दिल में एक ऐसा भय उत्पन्न कर दिया था, कि यदि किसी क़ैदी को यह पता चल जाता कि उसे काला पानी भेजा जायगा, तो मारे भय के उसके प्राण सूख जाते थे।

इसी प्रकार अनेक दुष्ट क़ैदियों को यहाँ लाया गया। और फिर एक समय आया, जब अत्याचारों में कुछ अभाव हुआ। इस तरह उनके साथ

किये जाने वाले दुष्ट व्यवहार काफ़ी नरम कर दिये गये। अच्छे चलन से रहने वाले क़ैदियों को कई सुविधायें भी दी जाने लगीं। इन क़ैदियों में भारत की वे नारियाँ भी थीं, जिन्हें भयानक अपराध करने के बदले क़ैद करके यहाँ लाया जाता था, किन्तु नारियों को इस स्थान पर लाने की योजना बाद में बनाई गई थी। अन्य क़ैदियों के साथ साथ इन स्त्रियों पर भी कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। नारियों के रहने के लिये यहाँ जेल में अलग प्रबन्ध था, परन्तु पुरुष क़ैदियों के साथ मिलने के लिये उन पर कोई विशेष पाबन्दी नहीं थी।

नेक-चलन स्त्री तथा पुरुष क़ैदियों को बाद में जेल से छोड़ कर छोटे छोटे गाँवों में बसा दिया जाता था। परन्तु इन्हें यह रिहाई तभी प्राप्त होती थी, जब तक कि वे अपना विवाह न कर लें। क़ैदी पुरुषों को क़ैदी स्त्रियों के बीच से एक दूसरे को चुन कर विवाह करने की आज्ञा थी। परन्तु विवाह के लिये परस्पर दोनों की अनुमति बड़ी आवश्यक होती थी।

विवाह करने के पश्चात जेल से रिहा करके जब इन्हें किसी गाँव में आबाद कर दिया जाता था, तब आप से आप ही इनके जीवन-यापन हेतु किसी न किसी धन्धे का भी प्रबन्ध हो ही जाता था। क्योंकि जो कार्य भी इन्हें जेल में सिखाये गये होते थे, उन्हीं में से किसी एक को यह लोग अपना रोजगार बना लेते थे। इन धन्धों में नाई, धोबी, जुलाहे, मकान आदि बनाने वाले, लोहार, बढ़ई आदि कारीगरों के धन्धे प्राय: देखने को आते हैं। इसके अतिरिक्त जिन लोगों को काश्तकारी का कार्य सिखाया गया था, उनके लिये खेती योग्य धरती का भी प्रबन्ध कर दिया जाता था। यह धरती इन क़ैदियों को आवश्यकतानुसार दी जाती थी।

गाँवों में बसने के पश्चात भी इन लोगों पर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। यदि कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार का जुर्म या शरारत करता तो उसे दण्ड दिये जाते थे। शाम को आठ बजने के पश्चात किसी व्यक्ति को भी अपने घरों से बाहर जाने की आज्ञा नहीं थी। यदि कोई कार्य-विशेष हो

भी, तो सरकारी आज्ञा प्राप्त करना अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त जो भी व्यक्ति अपने रिश्तेदारों या मित्रों से मिलने दूसरे गाँव को जाता था, उसे भी जेलर अथवा ग्राम के मुख्य चौकीदार से परमिट लेना पड़ता था, बिना परमिट के गाँव की सीमा को पार करना अपराध समझा जाता था। ऐसी पाबन्दियों से उनके अपराधी जीवन इस प्रकार सुधरे हैं, जिन्हें देखने पर ऐसा लगता है मानो न तो उन्होंने कभी कोई अपराध ही किया था, और न ही वे कभी कोई दुष्ट कर्म कर ही सकते हैं।

उनके अपराधी जीवन को सुधारने तथा फिर से एक नया जीवन आरम्भ कर सकने की जो सुविधायें इन्हें मिली हैं उनके लिये यह अपने आपको भाग्यशाली समझते हैं। और आप सच मानिये, कि जितना सुखी तथा शांतिमय जीवन आज इनका है, उतना शेष भारत में रहने वाले लोगों को प्राप्त नहीं है। अपराध तो वहाँ होते ही नहीं। किसी भी प्रकार का झगड़ा या लड़ाई इन में नहीं होता। सभी मिल-जुल कर रहते हैं। सब से आनन्द की बात तो यह है, कि यह सब अपने आप को एक नवीन जाति समझने लगे हैं, जिन में हिन्दू मुसलमान, सिख इसाई सब धर्मों के अनुयायी हैं। अलग अलग धर्मों से सम्बन्धित होते हुए भी ये लोग अपने आप को एक ही वंश के समझते हैं, और इनका यह मेल इतना दृढ़ है, कि पहचान करना कठिन सा लगता है, कि इन में कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान। इसके अतिरिक्त ये लोग अपने आप को भारत का नागरिक समझने में गर्व अनुभव करते हैं। इनके सामने यदि कोई अन्देमान-द्वीप की बुराई करे तो इन्हें दुःख तो अवश्य होता है, परन्तु इतना दुःख नहीं होता, जितना कि किसी के भारत-वर्ष की उपेक्षा करने पर।

अब तो सरकार इन्हें सुशिक्षित करके उन्नति शील बनाने की ओर बड़ा ध्यान दे रही है, क्योंकि आज भारत विदेशियों के अधिकार में नहीं, बल्कि पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, और यहाँ उसका अपना राज्य है। इन लोगों को अधिक उन्नत करने के लिये सरकार अब निःशुल्क उच्च शिक्षा का प्रबन्ध

भी कर रही है। ताकि ये लोग अपने देश को आगे ले जाने में देश की कुछ सहायता कर सकें।

इसके अतिरिक्त सरकार ने पाकिस्तान से आये हुये कुछ शरणार्थियों को भी यहाँ आबाद किया है, तथा उन्हें आवश्यकतानुसार सहायता भी दी है। इन लोगों के रहने के लिये सरकार ने ऐसा प्रबन्ध किया है, जिसे पा कर ये लोग पूर्ण-रूपेण संतुष्ट हैं। अब और भी तीन लाख व्यक्तियों को यहाँ ला कर बसाने की योजना बनाई गई है, जिसे पूरा करने के लिये सरकार आवश्यकतानुसार हर प्रकार का प्रबन्ध कर रही है।

इतना ही नहीं, बल्कि उन थोड़े से आदिवासियों की दशा सुधारने तथा उन्हें हर प्रकार से सभ्य बनाने का भी प्रयत्न किया जा रहा है, जिन की ओर आज तक किसी ने भी आंख तक न उठाई थी। और ऐसा करने में हमारी सरकार एक सीमा तक सफल भी हो पाई है।

वैसे तो यहाँ कई प्रकार की भाषाएँ बोलने वाले लोग बसते हैं, परन्तु फिर भी यहाँ के लोग प्रायः हिन्दोस्तानी भाषा ही बोलते हैं। कुछ आदिवासियों ने भी अब इस भाषा को सीख लिया है।

अब अन्देमान कैदियों का देश नहीं रहा, और न ही वह किसी आदिम-जाति का देश है। आज तो वहाँ रहने वाले सभी लोग भारत के श्रेष्ठ नागरिक हैं। अब कोई इसे 'काला पानी' के नाम से याद नहीं करता, बल्कि आज तो इसे भारत विशाल का ही एक अंग समझा जाता है। और इसका भी हमारे लिये अब उतना ही महत्त्व है, जितना भारत-वर्ष में स्थित एक एक कण का। हमें गर्व है, कि आज अपने प्रयत्न द्वारा हमने इस पिछड़े हुये अपने एक अंग को सम्भाल लिया है। और उसे एक ऐसे प्रकाश में ला कर खड़ा कर दिया है, जहाँ निराशा नहीं, बल्कि चारों ओर आशा ही आशा दिखाई पड़ रही है।

मिनी-कोय द्वीप के निवासी

मिनी-कोय द्वीप भारत-विशाल का एक अज्ञात परन्तु ऐसा रमणीक प्रदेश है। जिसकी हर चीज में एक अनोखा-पन झलकता प्रतीत होता है अनेक भारत वासी ऐसे भी हैं, जिन्होंने सम्भवतः इस द्वीप का नाम तक न सुना हो। अपने देश के इस आश्चर्यजनक भाग से अभी करोड़ों भारत वासी पूर्ण रूप से अपरचित हैं। वास्तव में यह द्वीप विशाल-भारत के दक्षिणी तट माला-बार से लगभग पैंतिस मील दूर पश्चिम की ओर अरब सागर की नील वर्ण तिरंगों में स्थित है। मूंगे तथा मरजान आदि जन्तुओं की कला का प्रतीक द्वीप-समूह लका-देव, इस अज्ञात द्वीप के ठीक उत्तर में स्थित है। वैसे तो यह द्वीप भी मूंगों के बनाये द्वीपों का ही एक अंग है, परन्तु इसकी गणना लका-देव आदि द्वीपों से भिन्न होती है। और यह उसी अक्षांश पर स्थित है, जिस पर कि कुमारी अन्तरीप।

इस द्वीप का क्षेत्र-फल भी लगभग तीन वर्ग मील से अधिक नहीं है। लम्बाई तो इसकी लगभग छः मील होगी, परन्तु चौड़ाई कहीं भी आध मील से अधिक नहीं जान पड़ती। मछली के आकार का यह द्वीप जितना छोटा है, उतना ही इसका दृश्य अत्यन्त मनोहर है। नारियल के वृक्षों के घने खेत चारों ओर फैले हुए हैं। यही यहां का धन है, जिन्हें यहां के बसने वाले अपनी ही पूंजी समझते हैं। यही यहां की एक मात्र खेती है, जिस पर यहां के लोग निर्वाह करते हैं। इसके अतिरिक्त यहां और कुछ भी पैदा नहीं होता।

इस छोटे से द्वीप में कुल चार हजार लोगों का वास है। जिसमें से हजार से भी ऊपर लोग तो माला-बार के तट की बन्दरगाहों में जहाजों पर सामान लादने तथा उतारने के काम के लिए इस द्वीप से बाहर ही रहते हैं।

सारे द्वीप में केवल एक ही बस्ती है, जो कि द्वीप के मध्य में स्थित है। दो तीन हजार की जनसंख्या का एक गांव सा ही समझिये। परन्तु हमारे ग्रामों की तरह वहां निर्धनता तथा अशिक्षा नहीं। वहां तो पशु पक्षी ही अशिक्षित कहे जा सकते हैं। गांव के सभी लोग पढ़े लिखे हैं, यहां तक कि स्त्रियां भी किसी से पीछे नहीं, इस क्षेत्र में तो उन्होंने पुरुषों को भी मात कर दिया है।

जितनी प्रतिष्ठा इस प्रदेश में नारियों को प्राप्त है, उतनी पुरुषों को नहीं। स्त्री ही कुटुम्ब की एक मात्र मुखिया होती है। इतना ही नहीं, अपितु पुरुषों पर तो वह राज्य करती है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा, परन्तु यह सत्य है, कि उत्तरी भारत में स्त्री के समक्ष जो स्थान पुरुष को प्राप्त है, वह स्थान इस द्वीप में पुरुषों के समक्ष नारियों को प्राप्त है। आज के विश्व में यदि पुरुष ने नारी को स्वतन्त्रता के सब से अधिक अधिकार कहीं दिये हैं, तो वह केवल इस मिनीकोय द्वीप में।

यहां सुख-शांति का साम्राज्य है। कोई भी दुःखी नहीं दिखाई पड़ता। प्रत्येक व्यक्ति सदा प्रसन्न दिखाई देता है। रुपये के मूल्य से तो यहां के वासी प्रायः अनभिज्ञ ही हैं। रुपये से अधिक मूल्य तो ये लोग इस द्वीप की मिट्टी को देते हैं। जिसमें नारियल के अतिरिक्त और कुछ भी पैदा नहीं होता। यही कारण है, कि इन लोगों के जीवन में अशान्ति के दर्शन नहीं होते।

इन लोगों की विवाह रीतियां भी बड़ी अनोखी हैं। यहां छोटी आयु में ही विवाह करने का प्रचलन है, तो भी स्त्री को ही अपने लिये योग्य पति चुनने तथा उससे शादी करने का पूरा पूरा अधिकार होता है। हमारी तरह विवाह के पश्चात दुल्हा दुलहन को अपने साथ अपने घर नहीं लाता, बल्कि वहां उल्टी ही रीति है, कि दुलहन, दुलहा को ब्याह कर अपने घर ले आती है, तथा इसके पश्चात अपने पति को अपने घर ही रखती है। लड़के को विवाह के पश्चात मां बाप का संग छोड़ना पड़ता है। परन्तु

कन्या माँ बाप का घर विवाह के पश्चात भी नहीं छोड़ती। शादी के पश्चात लड़के को अपनी पत्नी सहित सुसराल में ही रहना पड़ता है। और यह घर उससे तभी छूटता है, जबकि उसकी जीवन-लीला ही समाप्त हो जाये।

लड़कियाँ ही पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी समझी जाती हैं। लड़कों का इस में कोई अधिकार नहीं समझा जाता। उसे यदि अपना अधिकार कहीं जताना ही पड़े, तो वह अपनी पत्नी की सम्पत्ति पर ही अपना अस्थायी अधिकार जता सकता है।

हमारी तरह, यहाँ वंश पुरुष के नाम पर नहीं चलता, बल्कि स्त्री के नाम पर चलता है। विवाह के पश्चात पुरुष को अपनी पत्नी का ही खान्दानी नाम स्वीकार करना होता है। तथा उनसे उत्पन्न होने वाली सन्तान भी उसी नाम से सम्बन्धित समझी जाती है। कन्याओं का वंश तो पैदा होने के पश्चात से ही स्थायी समझा जाता है। परन्तु पुत्रों का वंश अस्थायी होता है, जो कि विवाह होने के पश्चात उसकी पत्नी के वंश में परिवर्तित कर दिया जाता है।

विवाह आदि मामलों में भी स्त्रियाँ ही आगे होती है। तथा इन्हीं की चलती है। पुरुष बेचारे की तो वहाँ कोई पूछ नहीं। यहाँ तक कि यदि देखा जाये, तो हमें मालूम होगा, कि सामाजिक क्षेत्र में यहाँ की नारी ने पुरुषों को सदा अपने से पीछे ही रखा है और उन्हें कभी आगे बढ़ने का अवसर ही नहीं दिया परन्तु उनका भी कोई दोष नहीं,क्योंकि पाप, पुण्य के प्रतिबन्धों से इनका भी जीवन रिक्त नहीं है, जिसने यहाँ के पुरुषों की आत्मा को दृढ़ता से जकड़ रखा है। वे हिल नहीं पाते और यदि इसकी उपेक्षा करने का विचार कभी इनके मानस को झंझोड़े भी, तो पाप पुण्य की मजबूत कुल्हाड़ियाँ इनके विचारों को खण्ड खण्ड कर डालती हैं न जाने किस काल से यहाँ के पुरुष की यह दशा हो गई है और अब तो निरन्तर अभ्यास ने इनके विचारों को इतना दृढ़ बना डाला है, कि प्रचलित रीतियाँ इनके समक्ष विधि की देन मात्र बन

कर रह गई है, जिस से इन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता और जो दिखाई देता है, उसी में ये रत रहते हैं, उसी में इनका विश्वास है।

इस द्वीप में प्रायः स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक सुशिक्षित हैं। पुरुषों को अधिक पढ़ने लिखने का चाव है ही नहीं। स्त्रियाँ पढ़ने लिखने के कार्यों में प्रवीण हैं। अब तो यहां की बस्ती में हमारी भारतीय सरकार की ओर से एक पाठशाला भी खोल दी गई है, अन्यथा इस से पहले स्त्रियां घर पर ही अपने बच्चों को पढ़ा लिया करती थीं।

वैसे यहां के सभी लोग इस्लाम धर्म को मानने वाले हैं, परन्तु फिर भी अन्य देशों की मुसलमान स्त्रियों की तरह यहां की स्त्रियां बिल्कुल भी परदा नहीं करतीं, और यही नहीं, बल्कि भारत की अन्य शिक्षित नारियों तथा पुरुषों से कहीं अधिक चतुर जान पड़ती हैं। प्रजातन्त्र को समझ कर अपने वोट को एक अमूल्य वस्तु समझती हैं। इन बातों को जान कर तो यह अनुभव करना कोई बड़ी बात नहीं, कि नागरिकता के अर्थ को यहां की अनोखी नारियों ने भली प्रकार समझ लिया होगा। पिछले चुनावों की रिपोर्ट से यह पता चलता है, कि स्त्रियों ने पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक वोट डाले थे।

इस द्वीप के नागरिक-कार्यों में भी स्त्रियों को ही अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। नगर का सारा का सारा प्रबन्ध एक मुख्य-स्त्री के आधीन होता है। अन्य सदस्य स्त्रियां उसकी सहायक होती हैं, जिन्हें चुनाव द्वारा जिता कर उनके पद पर नियत किया जाता है। प्रत्येक सदस्य स्त्री वार्ड की मुखिया होती है। इसका यह अर्थ नहीं, कि वह इतनी अधिक घमण्डी है, कि केवल राजनैतिक मामलों के और किसी कार्य को करना अपना अपमान समझती हों, और सभी कार्य बेचारे पुरुषों को ही करना पड़ता हो, बल्कि वह कुशल गृहणियों के रूप में अपने हर कर्तव्य को सुन्दरता से निभाती हैं। संसार में सब से अधिक बलवान "नारी स्वतन्त्रता" को प्राप्त करके भी इन्होंने अपने कर्तव्य तथा नारित्व-भावों का त्याग नहीं किया, बल्कि सब अधिकार पाकर भी इन्होंने अपने कर्तव्य से कभी मुख नहीं मोड़ा।

बच्चों का पालन पोषण, पति-सेवा, घर के सभी काम, और नारी लज्जा का इन्होंने सदा ही अपने तन मन धन से अनुकरण किया है, तथा आज भी उसमें किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आने दी। बल्कि उसे सच्चे हृदय से निभाती चली आ रही है। अवकाश के समय 'गृहस्थी में काम आने वाली वस्तुयें बनाया करती है। बहुत सी स्त्रियां अवकाश के समय 'वैरांगी' में चली जाती है। यह स्त्रियों की एक संस्था है, जहां वे अवकाश का समय बिता सकती हैं,। स्त्रियों के अतिरिक्त किसी भी पुरुष को उसमें जाने की मनाही होती है। केवल स्त्रियां ही इसमें आ जा सकती है। यहां बैठ कर वह अपनी सभायें जोड़ती है। तथा अपने परिवारिक, सामाजिक, तथा उन्नति के विषयों पर विचार-विमर्श करती हैं। यहां आकर वे केवल बातों में ही लगी नहीं रहतीं, बल्कि साथ ही साथ काम भी करती रहती हैं, जैसे नारियल के रेशे से रस्सियां बटना आदि।

स्त्रियों की देखा देखी पुरुषों ने भी अपनी चौपालें बना रखी है, जहां बैठकर वे भी अनेक विषयों पर विचार करते हैं, तथा साथ साथ कुछ काम भी करते रहते हैं। पुरुषों की इन चौपालों' को 'उनरी' कहा जाता है।

जहां तक आपसी झगड़ों का सवाल है, उन्हें दूर करने के लिये इन्हें सरकारी सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती, अपितु यहां के लोग उनका निर्णय अपनी चौपालों में होने वाली सभाओं के बीच ही कर लेते है। यही कारण है, कि यहां किसी पुलिस-स्टेशन तथा न्यायालय के दर्शन नहीं होते। सारे द्वीप में घूम जाइये, परन्तु आपको कोई पुलिस-मैन देखने को न मिलेगा। गांव के बीच में एक पंचायत-घर अवश्य है, जिस पर सदा तिरंगा-ध्वज लहराया करता है।

इसके अतिरिक्त अब तो सरकार की ओर से एक हस्पताल, एक स्कूल, तथा एक वायरलेस-स्टेशन भी यहां खोल दिय गये हैं, जो यहां के लोगों के लिये नवयुग की सजगता का सन्देश ले कर आये हैं। इसके पति-

रिक्त एक पुलिस चौकी भी भारत की सुरक्षा के उद्देश्य से यहां नियत कर दी गई है, जिसमें सीमान्ती पुलिस का एक दस्ता हर समय नियत रहता है। इस पुलिस को यहाँ की जनता के किसी भी मामले में हाथ डालने का अधिकार नहीं है, और न ही उसकी नियुक्ति इस उद्देश्य से ही की गई है, कि वह यहाँ के लोगों की सामाजिक जिन्दगी में किसी प्रकार की अशान्ति न फैलने दे, अपितु उसका कार्य तो भारत की सुरक्षा तक ही सीमित है। और यह दस्ता भी निश्चित काल के पश्चात सुरक्षा-विभाग की ओर से बदल दिया जाता है।

यही कारण है, कि यहां रुपयों के दर्शन बहुत कम होते हैं। सभी आवश्यकता की वस्तुएँ, अन्य अवश्यकता की वस्तुओं को देकर बदल ली जाती हैं, यही यहाँ के व्यापार का पुरातन ढंग आज भी यहाँ प्रचलित है। और यहाँ ही नहीं, बल्कि यहाँ के लोग अन्य बाह्य-प्रदेशों से अपनी वस्तुओं का व्यापार केवल माल के बदले में ही करते हैं। पैसों के बदले व्यापार करने की प्रथा इन लोगों में नहीं है।

द्वीप के अन्तिम दक्षिणी-भाग से लगभग आधी मील की दूरी पर एक अस्सी साल पुराना प्रकाश-स्तम्भ है। इस स्तम्भ की ऊँचाई लगभग डेढ़ सौ फ़ुट होगी। अस्सी वर्ष पहले भारत की अंग्रेजी सरकार ने ही समुद्री जलयानों के मार्ग स्पष्ट करने के उद्देश्य से इसका निर्माण किया था। अभी तक यह उन्हीं के हाथों में था। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात इंगलिस्तान की सरकार ने इस पर अपना अधिकार जितलाया, परन्तु अप्रैल सन् १९५६ में उसे इस पर से अपना अधिकार उठाना पड़ा। और अब यह हमारे स्वतन्त्र भारत की सम्पत्ति है।

इस द्वीप के लोगों की सब से अच्छी आदत यह है, कि यह सफ़ाई से बड़ा स्नेह रखते हैं, खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, यहाँ तक की चाहे कोई भी स्थान क्यों न हो, ये लोग वहां की सफ़ाई पर विशेष ध्यान देते हैं।

तनिक भी गन्दा स्थान यदि इन्हें कहीं दीख पड़े, तो ये लोग वहाँ खड़ा होना भी पसन्द नहीं करते। घर के सभी लोगों का यह कर्तव्य होता है, कि वह अपने साथ साथ अपने बच्चों को भी ऐसी ही शिक्षा दें, जिससे उनके हृदय में गन्दगी के प्रति सदा घृणा बनी रहे, और स्वच्छता के प्रति सदा प्यार बना रहे। यहाँ के सभी लोग अपने बच्चों को सफाई की यह शिक्षा देना आवश्यक समझते हैं। और उन्हें बार बार इस चीज़ से सचेत करते रहते हैं, कि किसी पवित्र स्थान को ही नहीं, अपितु खुली नालियों, तथा साधारण मार्गों को भी कभी गन्दा न करो। यदि यह कभी इस बात की उपेक्षा करते उन्हें देखते हैं, तो वह उन्हें उचित दण्ड भी देते हैं। इस प्रकार बाल्यकाल से ही यहाँ के लोग अपने बच्चों के चरित्र में स्वच्छता के प्रति स्नेह तथा गन्दगी के प्रति घृणा करते रहने के बीज बो देते हैं। जिस से सदा साफ़ रहने का उनका दृढ स्वभाव हो जाता है। और यह बात भी यहाँ प्राय: देखने को मिलती है, कि ये लोग जिस सरोवर से पीने का जल प्राप्त करेंगे, उसे सदा साफ़ रखने की चेष्टा करेंगे। पीने के लिये जल प्राप्त करने के अतिरिक्त किसी भी अन्य अवश्यकता के लिये उसका उपयोग नहीं किया जायगा। वस्त्रादि साफ़ करने, तथा स्नानादि के लिये अलग अलग स्थानों पर तालाब होते हैं, जिन्हें केवल इन्हीं कार्यों के लिये प्रयोग किया जाता है।

तैरना, नावों की दौड़ें करना, तथा अपनी प्रकार के अनोखे नृत्यों में भाग लेना, यही यहाँ के लोगों के विशेष मनोरंजन हैं, जिनका प्रदर्शन समय समय पर ये लोग किया करते हैं। तथा इस सुन्दरता से इनमें बाज़ियाँ मारने की चेष्टायें करते हैं, कि बस देखते ही बन पड़ता है। इन तीनों प्रकार की कलाओं में यहाँ का प्रत्येक आदमी पूर्ण रूप से निपुण होता है।

नारियल ही एक प्रकार से यहाँ की सब से बड़ी फ़सल है, परन्तु उसी के सहारे इन का जीवन-यापन नहीं हो पाता, इसलिये लगभग सभी आदमी मछली पकड़ने का काम भी करते हैं। इसके साथ साथ अपने नारियल

के खेतों का मोह भी बनाये रखते हैं। इस द्वीप में चूहे इतने अधिक हैं, जो इनकी फ़सलों को पनपने नहीं देते। पौधों की जड़ें काट काट कर उन्हें नष्ट कर देते हैं जिससे बड़ी हानि होती है। परन्तु अब भारतीय सरकार ने चूहों को पूर्ण रूप से इस द्वीप से मिटा डालने के जाल रच दिये हैं। जिससे अब शीघ्र ही यह व्याधि यहाँ से दूर हो जायेगी।

आज कल मछली उद्योग भी यहाँ बड़े जोर-शोर से चालू है। एक नाव के मछेरे लगभग ५०० रुपये की मछलियाँ एक दिन में पकड़ लेते हैं, और यदि कभी दाव लग जाये, तो इनकी आमदनी तीन तीन हजार रुपये रोज भी पड़ जाती है। मछलियों को खराब होने से बचाने के लिये, यहाँ के लोग उन्हें खारे पानी में उबाल कर तथा धूनी देकर धूप में सुखा लेते हैं। और इस प्रकार उन्हें भारत, लंका, मलाया तथा ब्रह्मा आदि देशों को भेजते हैं। मछली उद्योग को इन लोगों के जीवन का मुख्य सहारा कह देना अनुचित नहीं, क्योंकि यही ऐसी वस्तु है, जिसे पाकर इन्हें अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का प्राप्त करना सुगम हो जाता है।

सर्पाकार नौकायें बनाने में भी यहाँ लोग पूर्ण-रूप से सिद्ध-हस्त हैं। यहाँ की हल्की फुल्की नौकायें बड़ी प्रसिद्ध हैं। जिन पर यहाँ के लोगों की उच्च कला की छाप, बनावट तथा डिजाइन रूप में दिखाई देती है। वैसे तो कार्य चलाने योग्य नावें सभी बना लेते हैं, तथा सभी के पास वह होती भी है, परन्तु कई नाव तो इतनी कला-पूर्ण होती हैं, कि भारत, तथा सीलोन की नौकाओं से किसी भी प्रकार कम नहीं होतीं। इन्हें बनाने में जितना परिश्रम होता है वह प्रशंसनीय है।

वास्तव में इस अज्ञात तथा छोटे से द्वीप की कहानी जितनी अनोखी है, वैसे ही यहाँ के प्राकृतिक दृश्य भी हैं, जिन्हें नेत्रों से दूर करने को जी नहीं चाहता। मन यही चाहता है, कि यहाँ पर ही आकर बस जाया जाय।

आज हमारे लिये यह छोटा सा द्वीप कितना अज्ञात है, इस लिये हम उससे अनभिज्ञ हैं। परन्तु आज भारत उन्नति के पथ की ओर बड़ी शीघ्रता से बढ़ता जा रहा है और वह दिन दूर नहीं, जब हम से भूले हुए ये द्वीपवासी हमारे अत्यन्त निकट होंगे। हमारी कामना है कि वह दिन शीघ्र आ पहुंचे और यह अज्ञात द्वीप, जिसे आज से पूर्व न कभी सुना, न पढ़ा था, हमारा एक अभंग भाग सिद्ध हो, जिस से भारत को इस पर गर्व करने का अनुपम अवसर प्राप्त हो सके।

॥ जय भारत ॥